

तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो

लेखक मूनि नथमल
सकलादिता कमलेश चतुर्वेदी

★

Lokodaya Series Title No 217

TUM ANANT SHAKTI KE
SROTE HOE

(Feb 6 Mar 1)

Muni Nathmal

Bharatiya Jnanpith
Publication

First Edition 1965

Price Rs 2 00



प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय

१ मल्लीपुर पाक प्लेम, बलवन्ता २०

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुन्द रोड, बाराबन्सा ५

विक्रय केन्द्र

३६२ १२२ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली ६

प्रथम संस्करण १९६५

मूल्य २ ००

सामग्री प्रकाशक

प्राथमिकी



तुम अनन्त दक्षिण ग्यात हा इग अमिधाये स्पष्ट है कि दक्षिणका सात बाहरये भातरकी ओर नहीं जा रहा ह, किन्तु भीतरमे बाहरकी ओर आ रहा ह। हमार भीतर दक्षिण है, प्रकाश है और भा बहुत कुछ है पर हमारी इन्दी बहिमुखा है और मन भी बहिमुख हो रहा है। इसलिये अपनी आंतरिक गति और प्रकाश हम अपरिचित ह। हम मुना-मुनाई से रटो रटाई बातोंक आधारपर जानत है कि हमार भीतर अनन्त दक्षिणवाँ छिपी पडा ह। पर मचाई यह ह कि हम नहीं जानत कि हमार भीतर अनन्त गतिधाराका अस्तित्व ह।

मनुष्यक इस सास्वत ज्ञानको मिटानक लिये हमार पुष्य मूर्तियोंक एक विद्याका आविष्कार किया। उम भाग आध्यात्मिक विद्या योगविद्या या मान विद्या कुछ भी कहिये, उमका प्रवाजन एक हा ह और बरू अपनी भीतरी दक्षिणधाराका प्रकटन।

सांख्य, वैश्विक बौद्ध जन आदि सभा परम्पराक्रमि योग विद्या समाप्त रही ह। म०पि पतंजलिका योगसूत्र बौद्धाका अमिधम्मकोष और विगुद्धिमग्ग बजिरोंका योग-आगिष्ट हठ योग तथा तान शास्त्रकी परम्पराम साधना सम्बन्धी अनक

ग्रन्थ मिलत है । व सुव्यवस्थित और सुसम्पन्नित है । जन-साहित्यम भी वसे ग्रन्थोंका कमी नहीं है पर व सुसम्पन्नित नहीं है । इसलिए योग विद्याके जिज्ञासुका पहला प्रश्न यह होता है कि क्या जन-परम्परामें योग विद्याका स्थान है ? यह प्रश्न अनेक व्यक्तिमान मुक्षस पछा है और उन व्यक्तिमान भी वना है जो जन-परम्परामें पत्र पुस है । इस प्रश्नका पूर्ण समाधान अभी हम नहीं दे पाय है । आचार्य श्री तुलसी इस विद्याम प्रयत्नशाल है और समय आन पर व समाधान प्रस्तुत किया जायगा ।

योग विद्याकी आरंभका प्रारम्भ हो रहा है । साधना व अनुभूतिका योग मिलनपर वह मज्ज सुलभ हो जाता है, जिसे दुर्लभ माना जाता है । आचार्य श्री तुलसीके प्रोत्साहन और भाग-दानन मुक्ष जिस विद्याम गतिशाल बनाया वह स्वर्गके धारकी गति है । इसलिए इन निव धाम गति सापेक्ष स्थिति की अपेक्षा स्थिति सापेक्ष गति ही अधिक मिलगी । उनकी आज अपेक्षा है ।

मुनि धारका कमउ तथा मुनि दुर्लभगर्जन इन निव धामका सम्बन्ध कर उन सामयिक अपेक्षाकी पूर्ति की है । यह पुस्तक-गत योगके परिचय पानका एक माध्यम बन जायगा — यह म मानत है ।

पारंगुन कृष्णा २२
नागौर (राजस्थान)

— मति म

	●
१ बुद्धिवा बुद्धिमित्र आदिष्ट	१
२ शैव-भाग	४
३ शैव-भाग और भाष्यन	१०
४ भाष्य-भाग और भाष्यन	२१
५ भाष्य	२३
६ भाष्य	२३
७ भाष्य-भाग और भाष्यन	२४
८ मोह-ग्रह	४१
९ भाष्य और उप-भाष्य	४२
१० उपायना-क-धीन	४८
११ बुद्धि उपायना	५२
१२ भाष्य-क-मन्त्र	२५
१३ भाष्य	५७
१४ विहार-धर्म	६०
१५ स्वास्थ्य और भाहार विवेक	६४
१६ वित्त-गुदिक-साधन	६८
१७ सधन	७२
१८ निर्णय	७६
१९ सहिष्णुता	७६
२० समपण	८१
२१ ग्रामाणिकता	८८
२२ परस्परता	९२
२३ तुम अनन्त क्षणिक हात हा	९४
२४ तुम्हारा अविष्य तुम्हारे हाथ में	९४

बौद्ध भिक्षु तो क्या कारण है ?

आयरलैंड ध्यानकी उत्कृष्ट आराधनासे ही यह एसा बना हुआ है । मरी ब्रानपर विश्वास न हुआ हो तो कुछ दिन इसे आप अपन मठमें रख कर परीक्षा काजिए ।

बौद्ध भिक्षुत आचार्यकी वाणोजा स्वीकार किया । दुगलिका पुष्यमित्र आचार्यका आश्रम पा उष भिक्षु साथ चल गय । कुछ दिन बर्ती रह । पीछेक भाजन किया पर व स्थूल न बन । उनकी सूक्ष्मतान बौद्ध भिक्षुआको प्रभावित किया और अब व जन गामनकी ध्यान प्रणालीके प्रति सन्तुष्ट नहीं ।

आचार्यकी तुम्होव पास कोई दुगलिका पुष्यमित्र जाना ना भिक्षु जगन्नेशजीका जिनामाका उसी प्रकार परित्याप मिलता किन्तु परिस्थिति भिन्न थी । आज ध्यानी मुनियो और ध्यान दोनाकी परम्परा लुप्त सी है । आगमाम ध्यानका प्रणाला विकीर्ण सी है । परबर्षी माहित्यम ध्यानक तत्त्वानुगासन मागबिन्दु योगशक्तिमुच्चय, मागशास्त्र जस छोट ग्रन्थ है पर ध्यानकी समग्र प्रणालीका प्रतिपादक कोई ग्रन्थ नहीं है । जा सूक्ष्म तथ्य हात है व अन्त्याम-अमक रिना विस्मृत हा जान है । आज विस्मृति की दशा है यह स्वीकार करत हुए हम काई सकाच नहीं हाता । भगवान मन्त्राजीकी मारी तपस्या ध्यान प्रविमास परिषण थी । तपस्या क्या है ? कोरा अनगन हो तपस्या नहीं है । वह बाह्य तपस्या है, साधन है ।

ध्यान वा नरिक तपस्या है । अनशनक लिए ध्यान नहीं है ध्यानक लिए अनशन है । बाह्य तप अनुपादेव नहीं है किन्तु बन्ती उपास्य हा रण है यह अनुपादय है । मुनि दूगर प्रहरम ध्यान कर—बोयं प्राण श्रियादा— यह अभिप्र०भारी मुनिक लिए ही माना जान तया है । ध्यान, सवर याग जैम शत्रु अपरिचित-से हाते जा रहे है । आजका जन मानस जितना बाह्याचारपरक है उतना अध्यात्मयोगपरक नहीं है । जन धमका मूल सूत्र है—अपाय विप्रथ । साधनाका आलम्बन अपाय विजयक लिए है पर

जीन योग

उमास्वातिन सम्पन्नान सम्पन्नान और सम्पत्चारित्रका मागमाग
 क्या है। उमाका आचाय हमके इन याग क्या है। हरिभद्र सूरिक अभि
 मतम धम माग याग है। याग क्या है या माग याग—सम्पन्न क्या है।
 धम माग याग साधन है इसलिए धमका जितना परिशुद्ध साधन है उत
 नया याग है। यह निश्चय दष्टिभ है। किन्तु व्यवहार याग या तांत्रिक
 सक्तन धनमाग याग स्वायत्त आगत आदि एकप्रकार विनाय प्रयोगका
 कहा जाता है। हरिभद्र सूरिन यागक पाँच प्रकार बताते हैं—

- १ स्वान यागात्मग पयः पद्मानन आदि आगत।
- २ अण-वण याग का उच्चारण मात्र अण आदि।
- ३ अथ मन आदि का याचयाय।
- ४ आत्मधन स्था द्रव्य मनका वन्दना करना।
- ५ रक्षित निरात्म्य या निर्विकल्प चि माग समाधि रूप।

इनमें से प्रथम तीन प्रकारको कमयाग और पाँच तान प्रकारको ज्ञान
 याग क्या है। पतञ्जलिक अनुसार माग है—

- १ यम जीर्हमा मत्प अचोय क्रमधम और अपरिग्रह।
- २ निमम शीत सताप तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान।
- ३ आसन सुखपूर्वक स्थिर हाकर बटना।
- ४ प्राणायाम श्वास प्रश्वासाका गतिविच्छेद।
- ५ प्रत्याहार इन्द्रियाका अपन अपन विषयान हटाना, अतन्द्र्या
 करना।
- ६ धारणा चित्तका किसी छपयमें बाँधना—स्थिर करना।

७ ध्यान वित्तवा एक विषयम स्थिर होना ।

८ समाधि कर्मो ध्यान जब अथवाएका प्रतिमात हो जाय स्वल्प
गुण हा जाय ।

जब परम्पराम यागका अष्टांग व्यवस्था नहीं ह । हरिभक्त मूरति जा
पंचांग व्यवस्था की ह बहुत मत्रान ह । प्राचीन व्यवस्था द्वाभ्याग है । उन
तत्र कही गया ह । उनक यागह अर्थ है—

- १ अनगन उपवास आदि तप ।
- २ ऊनात्मा कम स्थाना भिन्नात्तर ।
- ३ भिक्षाचरिका जोशनिर्वाहक माधनाहा मयम ।
- ४ रम परिष्याग मरुत आ रिका परिष्याग अस्थात् ।
- ५ कायवृत्त आसन ।
- ६ मनीनता ह्यस्थिका अपत्र विषयमे ह्याकर अतमुष्वा करना ।
- ७ प्रार्थि चत पुत्र कृत ताय विगुद्ध करना ।
- ८ विनय नम्रता ।
- ९ वशावय दूषराने निग कुष्ठ करना ।
- १० स्वाध्याय पठन ।
- ११ ध्यान वित्त वृत्तियाका स्थिर करना ।
- १२ अमुत्सग चरीरका प्रवृत्तिको रोकना ।

नाम प्रथम छत्रको बाह्य और तप छत्रका आन्तर तत्र तप कहा गया
ह । म पि पनत्रलिन पुत्रवर्षी वाच यागागाका बहिरंग माधन कथा ह ।
धारणा ध्यान और समाधि—य तान अन्तरंग ह । निर्बीज समाधिक
लिए ह्ये भी भी रम माना ह । अनगन ऊनात्मा भिक्षाचरिया और
रम परिष्याग । उनका सम्प्रय भोजनम ह । स्वाध्यायका दृष्टिम भाजनका
विवन प्रत्यक मनुष्यके लिए आवश्यक ह । यागोक्त विग उमकी और अधिक
अपेक्षा ह । जा अर्पित काल क्षत्र माया स्वाध्यायि त या पद्य गरिष्ठ
एतु अरि अरन पावा कथा देव्यार भाजन करता ह उने औरपने क्या ?

ओषध उस लनी होनी है जा अग्नि और अहित स्यात् । यह स्वास्थ्य दृष्टि है । योग-साधनामें गरारकी अपेक्षा मनको प्रधानता दी गयी है । मान (मन्त्र) स्वास्थ्यके लिए भाजनपर जितना विचार किया गया है उतना ही भाजन न करनेपर किया है । जनतर याग-गाम्पा इम विषयमें भिन्न मत रखत है । धरुण्डन मागोके लिए उपवासका नियम किया है । उद्धान सिद्धा है कि याग कठिन और वागा भाजन न कर । जनाचार्योने माघकके लिए तीर्थ तपका विधान किया है । भगवान् महावार दाघ तपस्वा थे । उद्धान दाघ तप किया दा उपवासमें लकर छः मास तकके उपवास किया । दाघ कालमें उपवाससे रासायनिक परिवर्तन होता है सकल्प सिद्धि मद्भज मुलभ होती है यह तस्व उर्हो पात था ।

उपवासका अर्थ आहार त्याग ही नहीं है । उसका अर्थ है विषय और विकारके त्यागकी संयुक्त आराधना । गीताके अनुसार— निराहार अग्नि विषयासे निर्वात पा जाता है । उससे रम न-ग छूटना कि तु रम रहित परमनस्त्वना साक्षात् पा व- रास भी मुख्य ही जाता है । उपवासका प्रयोजन गरार प्राण नो कि तु लक्ष्यपूर्ति है । गरारका प्राण ज्ञाना उमका प्राणिक परिणाम है । मन्त्रात्मा बद्धन अपन ल-पका पूतिक लिए सक-प किया— इस आसनपर बठ बठ भरा शरीर भल सुप्त जाये समडा हट्टो और मास भल विनष्ट हो जाये कि-तु दुःख बाधिको प्राप्त किया बिना यह शरीर इस आसनसे बिचलित नहीं होगा । भगवान् महावारन सक-प किया कि म सब प्रकारके बछाको तरतक सहन करेगा जवनक केवन्पानकी उपलब्धि न हो जाय । सक-पकी पूतिक लिए उपवास शरीर-शोधन या विषय-वजन आर-पक है । प्राणायामके साथ उपवासका सम्बन्ध कम है । उपवासका निषध भी प्राणायामके प्रकरणमें किया गया है और उसके आरम्भमें दूध पी तथा दो बार भाजन करनेका विधान किया गया है ।

जन जात्राय प्राणायामको महत्त्व नहीं देत । उनक मतमें यह चित्त

निरोध और इन्द्रिय विजयका निश्चित उपाय नहीं है। जन प्रक्रियाएं अनुसार विजाताय द्रव्यका रेचन और अन्तरभावमें स्थिर होना कुम्भक है। चित्तको एकाग्रताके लिए यही प्राणायाम है। योगवाणिष्ठ में हठम चित्तकी विजयका अनुपादय माना गया है। ऊनाद्री या मित्तारक विषयमें सब ध्यानजन एक मत है।

रस-परिस्थापना अथ है विकृति दानवात् रसाका वजन या आस्वात् वसि। माग साधना और स्वात्-वृत्तिमें उतना ही विरोध है जितना विरोध अग्नि और भयमें है। साधक निय रसोंका सवन न करे मनाग आहार कर, उसमें आसक्त न हो उसकी स्मृति न कर उसमें मनिका नियोग न कर।

कायकलश

कायकलशके चार प्रकार हैं—

१ आमन। २ आतापना सूयकी रश्मियाका ताप रना पीठको सन्न करना निबन्ध रहना। ३ विभूषा वजना। ४ परिक्रम गरीरकी साज-सज्जाका वजन। आमन का प्रकारक होत है—गरागतन और ध्यानासन। पतञ्जलिन आमनका 'स्थिर मुख' कता है। ध्यानासनके लिए तो अपेक्षा है—१ शरीर स्थिर रत् और २ सुखपूर्वक बटा जा सके। जन परम्परामें बीरासन आनि कठोर और पचासन आनि सुखासन—इन दोनोंका सुखावह कहा गया है।

संश्लिप्तता

संश्लिप्तताके चार प्रकार हैं—

१ इन्द्रिय संश्लिप्तता इन्द्रियाके विषयास बचना। २ कषाय मलानता क्रोध मान माया और लाभस बचना। ३ माग-संश्लिप्तता मन, वापा और शरीरकी प्रवृत्तिसे बचना। ४ विविध भजन-आसन एकांत स्थान में सोना बैठना। संश्लिप्तताका आगिक मुलना पतञ्जलिक प्रत्याहारम

होती है। योगीके लिए उपशांत वृत्ति और स्थिरता आवश्यक होती है।

इसमें चतुर्थ प्रकारमें योगी बंधे रहें इसका निर्देश है। साधकके लिए श्मशान, गृध्रागार और वनमूल इन स्थानामें रहनका विधान है। तपके ये छः प्रकार त्रिषयामि बचनके साधन हैं। विकार आत्माका आंतरिक तप है। त्रिषय आत्माका दोष नहीं है वह विकारका निमित्त है। इसलिए उसमें बचना आवश्यक होता है। निमित्तसे बचनके साधनाको बाह्य तप बचनका कारण महा है। प्रायश्चित्त ब्याप्त आंतरिक विकाराका नाशन होता है इसीलिए उसे आंतरिक तप कहा गया है।

प्रायश्चित्त मूलके अनुरूप होता है। इसमें साधनाका पद प्रशस्त होता है। विनयका अर्थ है—गयम या गुह्यिक साधनाका आलम्बन। उगके सात प्रकार हैं १ गानका विनय २ ज्ञान सम्भोग श्रुष्टिका विनय, चारिप्रका विनय ४ मन विनय—मनका प्रशस्त प्रयोग ५ बचन विनय—बचनका प्रशस्त प्रयोग ६ वाय विनय—साधनाको चलना खड़ा रचना बठना सोना ७ लोकोपचार विनय—गुरुकी इच्छाका सम्मान करना उनका अनुगमन करना उनका कृतज्ञ रहना आदि।

धैर्यादुत्थ

साधकको सत्याग देना ब्यावस्थ्य है।

स्वाध्याय

स्वाध्याय और ध्यान दोनों परमात्म भावकी अभिव्यक्तिके अनन्य साधन हैं। योगी स्वाध्यायसे विरत हो ध्यान और ध्यानसे विरत हो स्वाध्याय करे। स्वाध्याय और ध्यानकी सम्पन्नामे परम आत्मा प्रकाशित होती है।

स्वाध्यायके पाँच प्रकार हैं—१ वाचना (पठाना), २ पूछना (प्रश्न करना) ३ परिवर्तना (यात्रा किये हुए पाठको दोहराना) ४ अनुप्रेक्षा (चित्तन) ५ धमकना (धम चर्चा धम धार्ता)।

गिरधन पूछा भ-त । स्वाध्यायका क्या फल है ?

भगवान् न कहता स्वाध्यायमें ज्ञानावर्णन सीधे होता है ।

ध्यान

स्वाध्यायक पश्चात् ध्यानका क्रम है । पतञ्जलिन ध्यानका पृथक्त्व धारणा माना है । इस तत्वायोगमें धारणा नामकी बाइत-व नहीं है । किन्तु जन-परम्परामें एकाग्रमन सतिवगता जो है, उसकी तुलना धारणासे होती है । एकाग्रका अर्थ है बाइत एक आलम्बन । उसमें मनकी स्थापित करना जगाना या बाँध देना—एकाग्र मन सतिवगता है ।

गिरधन पूछा भ-ते । एकाग्रमन सतिवगताका क्या फल है ? भगवान् न कहता एकाग्रमन सतिवगताका फल है—चित्त निराध । यो ध्यान है । जो अध्यवसाय चला है वह चित्त है और जो स्थिर है वह ध्यान है ।

ध्यानका पञ्चा रूप है चित्तनिराध और दूसरा रूप है शरीर बाणो और मनका प्रवृत्तिका पूर्ण निराध । साधनाका दृष्टिस ध्यानके दो प्रकार हैं—धर्म तथा गुण ।

य जोना आत्मलक्षो है । शक्य ध्यान पदधर (विशिष्ट ज्ञान) मुनिवों के होता है । उसमें पहले धर्म ध्यान ही होता है । उसके चार प्रकार हैं—

- १ आना विषय आगमक अनुसार सूक्ष्म पञ्चयोंका चिन्तन करना ।
- २ अपाय विषय हृद्य क्या है उसका चिन्तन करना ।
- ३ विपाक विषय हेतक परिणामाका चिन्तन करना ।
- ४ सम्भान विषय लोक या पञ्चयोंकी आदृतिया स्वम्पाका चिन्तन करना ।

चिन्तन करना ।

आना, अपाय विपाक और सम्भान ये चार हैं । जैसे स्थूल या सूक्ष्म आत्मभूतपर चित्त एकाग्र किया जाता है, वैसे ही इन चार विषयापर चित्तका एकाग्र किया जाना है । इनके चिन्तनमें चित्त निरोध होता है चित्तका गति होती है इच्छित्त इनका चिन्तन धर्म ध्यान कहलाना है ।

ध्यान योग

आत्मा विषयस्य सात्त्विक भावनी प्राप्तिं प्राप्तिं हती ह । अपाय विषयसे राग द्वेष मातृ ओर उनसे उतरने इतिशाले दुःखासे मुक्ति मिलता ह । विषय विषयस्य दुःख कस हाता है ? क्या हाता ह ? किस प्रवृत्तिका क्या परिणाम हाता ह ? इनका जानकारी प्राप्त होती है । यस्थान विषयस्य मन अनामकन वषता ह । विषयकी उत्पत्ति, व्यय और ध्रुवता जान ला जाती ह । उसक विविध परिणाम परिवर्तन जान लिय जात है तब मनस्यका मन स्वतः घृणा हास्य शाक आदि विकारास विरत हो जाता ह ।

धर्म ध्यान वित्त निराय या वित्त विगुट्टिका पार्श्विक अभ्यास ह । शुक्ल ध्यानमें यह अभ्यास परिपक्व हा जाना है । मन सहज ही चल ह । अद्वितीय अपन अपन विषयका ग्रहण कर उस प्ररित करता है इस लिए उसका चलता और बद्ध जाता ह । य समूचे विषयकी परिष्कार करन लग जाना । ध्यानका फायर उस भ्रमणशील मनकी रोप विषयस्य हाता विसा एक विषयपर स्थिर कर देना ।

श्यान्त्या स्थिरता वषता ह । त्या त्या मन शांत और निष्प्रकम्प हा जाता है । शुक्ल ध्यानक अंतिम चरणमें मनकी प्रवृत्तिका पुण निराय पुण मवर या समाधि प्राप्त हा जाना ह । शुक्ल ध्यानक चार प्रकार ह—

१ पञ्चत्व वित्तक सविचारि २ एकत्व वित्तक अविचारि ३ सुप्त क्रिय अप्रतिपानि ४ समुच्छिन्न क्रिय अनिवृत्ति ।

पतञ्जलिन समापत्तिक चार प्रकार बतलाय ह—१ सवितर्का, २ निवितर्का सविचारा ४ निविचारा ।

जन-परम्पराके अनुसार वित्तकका अथ श्रुतावल्म्बा विवल्प ह । विचारका अथ ह परिवर्तन । पूर्वघर मुनि पूर्वश्रुतक अनुसार किमी एक द्रव्यका आलम्बन ल ध्यान करता ह । किन्तु उसक विसा एक परिणाम या पर्यायपर स्थिर नहीं रहता । यह उसक विविध परिणामपर विचरण

करता = तथा गरीब अथवा और अथवा गरीब पर एक मन वाणी और गरीबों-के एक दूसरी प्रवृत्ति पर सक्रमण करता =, नाना शक्तिगोर्गान उभपर चिन्तन करता है। उसे पक्का वितक सविचारी बना जाता है। पतञ्जलि शब्द, अथ ज्ञान आदि विकल्पोंमें सकीण समापतिको सवितर्का माना =।

पुनःपर मनि पुनः पुनः अनुमार किसी एक शब्दका आत्मबन्धन से उसक किना एक परिणामपर चित्तका स्थिर करता है। वह गरीब अथ और मन वाणी तथा गरीब पर सक्रमण नहीं करता। वसा ध्यान एकत्व वितक अविचारा कहलाता है। पहलेमें पक्का है, इसलिए वह सविचारी है। दूसरेमें एकत्व है, इसलिए वह अविचारी है।

पहला समापत-गृहका प्रयोग है और दूसरा निर्वात-गु का। पतञ्जलिने शब्द पान आदि विकल्पोंमें गरीब अथवा अथमात्रके साक्षात्कारको निवृत्तता समापति माना है। उनक अभिमतमें सवितर्का और निवितर्का स्थूल पञ्चविषयक है सविचारा और निवृत्तारा सूक्ष्म पञ्चविषयक है। जन दृष्टिक अनुमार उक्त दाना प्रकारोंमें स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकारक पञ्च आत्मबन्धन बन्त है। पतञ्जलि चारा समापतिविका समाज मानत है। जन शक्ति अनुमार ये मानक उपनमस प्राप्त हा ता समाज और महक शब्द प्राप्त हा ता निर्वात शैली है।

पक्का वितक-सविचारा अर्थात् भू प्रधान ध्यानका अभ्यास दृढ़ जाता है तब एकत्व वितक अविचारा अर्थात् अम प्रधान ध्यान प्राप्त जाता है। इनक अभ्यासमें मोह क्षीण होता है साथ साथ गान और शानक आवरण तथा अंतराय क्षीण हा जात है। आत्मा सबन सबगर्भ योगराग और अनन्त शक्ति-सम्पन्न बन जाता है। आयुष्य क्षय रहता है तबक वह योगी जाता है। उसकी मृत्यु निकट हाती है तब उसक सूक्ष्म क्रिय अप्रतिपानि ध्यान हाता है। इसमें पहले मनका फिर वाणीका और फिर वायाका निरोध होता है। श्वास-वैसी सूक्ष्म क्रिया बचता है।

पश्चात् उमका भा निराध हो जाता है उस समच्छिन्न त्रिय अनिवृत्ति ध्यान कहा जाता है ।

इतकी प्राप्ति होने ही मुनि पक्ष ह्रस्वा ररा (अ ँ उ ऋ ऋ) व उच्चारण काल तक सरारा रन्ता है फिर मुक्क हा जाता है । पतञ्जलि गन्धर्व गुप्त ध्यानके प्रथम दो भेदका सम्प्रज्ञात और अतिम दो भेदको असम्प्रज्ञात समाधि कहा जा सकता है ।

धर्म ध्यानके चार लक्षण हैं—

१ आगा रवि राग-द्वेष माहक दूर होनेसे जो दुःखह—मिथ्या आग्रहका अभाव होता है ।

२ निराग रवि पूर्व गन्धर्व उत्पन्न सत्ता रवि ।

३ सूत्र रवि सूत्रके अध्ययनसे उत्पन्न रवि ।

४ अथगा रवि तत्त्वके अवगाहनसे उत्पन्न रवि ।

धर्म ध्यानके चार आलम्बन हैं—१ वाचना पढ़ना २ पठना पृष्ठना ३ परिव्रतना गहनना ४ अनुप्रष्टा चिन्तन ।

धर्म ध्यानके चार अनुप्रष्टा हैं—

१ एकत्वानुप्रेक्षा 'मे अकेला हूँ ऐसी भावना ।

२ अनित्यानुप्रेक्षा 'मव सयाग अनित्य है ऐसी भावना ।

३ अक्षरणानुप्रेक्षा 'दूसरा काइ श्राण नहीं है' ऐसी भावना ।

४ समारानुप्रेक्षा 'जाव सतारम पौरश्मण कर रहा है' एसा भावना ।

गर्व ध्यानके चार लक्षण हैं—

१ अथय 'यथाका अभाव कष्ट सहनसे अवल पद ।

२ अमम्मा सूक्ष्म पञ्चक त्रिपदम मूर्ता न हाना मायाज्ञान न पमना ।

३ विवक दह और आत्माका परिपक्व भू शान मयोग योग ।

४ द्युत्सग शरीर और उपकरणाम निर्लिप्तता ।

राज-ध्यानके चार आलम्बन हैं—

- १ क्षमा करने करना अक्रोध ।
- २ मक्ति निलोभता ।
- ३ मानव निरभिमानता ।
- ४ आज्ञा सरलता ।

गुरु-ध्यानकी चार अनुप्रेक्षाएँ हैं—

- १ अनन्तवर्ति अनुग्रहा भव परम्परा बनादि हूँ एसा भावना ।
- २ विपरिणामानुप्रेक्षा सब पक्ष विपरिणामना हूँ एसा भावना ।
- ३ अनुमानुप्रेक्षा समस्त सब मयाग अगम हूँ एसा भावना ।
- ४ ज्ञानानुप्रेक्षा आश्रय वाचनक हनु हूँ एसा भावना ।

धर्म ज्ञानके लिए श्रद्धा स्वाभाविक और भावना अपेक्षित है यह उमर लक्षण आलम्बन और अनुग्रहावास फलित होता है । गुरु ध्यानके लिए आत्मा स्वभावका अवगान और भावना अपेक्षित है उमरके लक्षण आत्मा प्राप्त होता है । भावनाके चारह हैं—१ अनिय २ अकारण ३ समार ४ एकत्व ५ अदत्व ६ अगोच ७ आसक्त ८ गहर ९ निररा १० धम ११ लोक-मस्थान और १२ बाधि । चार भावनाएँ और हैं—१ मश्री प्रमाद करणा २ मध्यम्व ।

इनमें प्रथम चार भावनाएँ धर्म ध्यानकी अनुप्रेक्षाएँ हैं । अनन्तवर्ति मसारानुप्रेक्षाका हा स्थिर अज्ञान है । विपरिणामका लोक अपायका आश्रय और अनुभवा अगोच भावना का जा सकता है ।

तपोमग

तपो यागका १२वाँ प्रकार व्युत्तमग है । तमका अर्थ है—हाप्यासका मक्ति गरीरका स्थिरता ।

महाप्रत और तपोयागमें पतञ्जलिके जहाग भागके छठे अंग ममाविष्ट है । प्राणायाम और धारणा—यहा गप रत्त है । प्राणायामके विषयमें

जन भावना क्या है ? यह बतलाया जा चुका है ।

धारणाक त्रिपथम वाक् मनसो नरीं ह । पाठक भी यादका एक अंग है । इसमें चित्त और अष्टि दाना एकत्र मियत किय जात है । जहाँ भगवान् महाशारकी ध्यान मन्त्रका उत्पन्न हुआ है वहाँ उन्हें एक पुद्गल निश्चित अष्टि और अनिमिषनयन कथा गया है ? नामात्त दृष्टिसे भा वन्त महत्त्ववण माना है । आचार्य हमचरन्त जिनमन्त्रका विनापता बतलात हुं लिखा है— जित् । आपका और और विनापताभावा मोक्षना तो दूर रहा पर अ यनीयिक स्थान पथकामन गिद्यिन गरात और नासाप अष्टिवाली आपकी मुग्ग भा नदीं गीयो । उत्तरवर्ती प्रथमै मृदुति कान ल्लान्ता नाभि, तात् और हृत्प्य कमल आत्ति धारणाभाका चरचा मिलतो है । भगवान् महाशारन साधनाका जा क्रम प्रस्तुत किया उसमें अनगन और ध्यान इन दोनोंका समन्वय था । यह साधना क्रम न कबल कष्ट स न था और न कष्टमे पलायन कर बिलको पकाप करनेका प्रयत्न था । साधकर लिए र्मा ष्यता और पकापता दाना आवश्यक् हात है । इस भावना क्रमम म्नाका मुमल था । समय परिवर्तनक साथ क्रममें परिवर्तन हा गया । ध्यानका स्थान गौण हा गया और अनगन साधनाक सिन्धामनपर जा बठा । इसीलिए अयत्नानी लाग जन साधनाका कवल कष्टमय था अत्यंत कठोर मानत है ।

भगवान् महाशारका साधना काल वारह वष और तरह पन्नाका है । उसमें अनगन आसन और ध्यानकी स्पर्शासी र्नी है । भगवान् न का अवधिमें तात सी लपथाम दिन भाजत पानी प्र ण किया और उक्ते आमन निपद्या—बायोत्सग प्रतिमाण कई गौ वार स्वाकार सी ।

वारह वार एक रात्रिकी प्रतिमा स्वीकार का । भगवान् का जन कवल पान उत्पन्न हुआ तब न उक्डू आसनम कर थे नी न्तिना उपवास था और ध्यानातरिकामे वनमान था । भगवान् जब दड भूमिक पत्ताल ग्रामम विहार कर रह थे, तब उ नान पाशाज नामक स्थलमें तीन दिनका उपवास

किया। कायात्मग मन्त्र की। उनका शरार आंगका जोर कुछ धुका हुआ था। दृष्टि एक पुद्गलपर टिका हुई थी। आँखें अनिमग थी। शरार प्रणिहित था, इन्द्रियो गुप्त थीं। दाना पर मट हुए थे और नामा हाय प्रलम्बित थे। इस मुग्धमें भगवानन एक रात्रिकी महाप्रतिमा की।

मानुल्लष्टि धाममें भगवानन मन्त्र महाभन्त्र और सवतोभन्त्र प्रतिमाएँ की। पूव पश्चिम उत्तर और दक्षिण इन चारों दिशाओंमें चार चार पहर कायात्मग किया जाय वह भद्रा प्रतिमा है। इसकी आराधना करन वाला पन्द्रहे दिन पूर्वाभिमुख है। कायात्मग करता है और रातका दक्षिणाभिमुख हो कायात्मग करता है। दूसरे दिन पश्चिम दिशाभिमुख और रातको उत्तराभिमुख है। कायात्मग करता है। भगवान् भद्राके अनन्तर ही महाभद्रा प्रतिमा प्रारम्भ कर दी। उसमें चारों दिशाओंमें एक दिन रात कायात्मग किया जाता है। भगवान् चार दिन तक इसकी आराधना की। इसके अनन्तर सवतोभन्त्रका प्रारम्भ किया। इसमें दस दिन रात लग। चारों दिशाओंमें चार दिन रात चारों दिशाओंमें चार दिन रात और एक एक दिन रात ऊँची और नीची दिशाके अभिमुख है। कायात्मग किया। दस तरह सोलह दिन रात तक भगवान् सतत ध्यानरत और उपवासो रहे।

स्थानागमें इनके अतिरिक्त सुप्त प्रतिमाका उल्लेख और मिलता है। उसका अर्थ आज्ञा पात नहीं है। वसिष्ठकार अभयदेव सूरिको भी पात नहीं था। इनके अतिरिक्त समाधि प्रतिमा उपधान प्रतिमा विवक प्रतिमा और व्यस्य प्रतिमा क्षत्रियप्रतिमा प्रतिमा महतोभन्त्र प्रतिमा सवमध्या और ब्रह्ममध्या आदि प्रतिमाओंका उल्लेख मिलना है। इनकी परम्परा लुप्त है और हून्य अज्ञान।

भगवान् महावीर प्राय मोन रहते थे। आनन्द होकर ध्यान करत। वे ऊँची नीची और तिष्ठो तोना दिशाओंमें स्थित पन्धोंको अपना ध्येय बनान।

योगके लिए निम्न विषय भा आवश्यक है । भगवानने साधना का लक्ष्य
बंदल एक मनुष्य भर नीचे ला ।

भगवान प्रहर भर निम्न भित्तिमा नष्टि टिकाकर ध्यान करत थ ।
भगवानने गिष्ठीक लिए भी ध्यान कासापगत विनयण प्रचुरतास
प्रयुक्त हुआ है । इतना बड़ी परम्परा कम सुप्तमा हो गयी, यह एक
अवपणीय विषय है ।



जैन-योग और आसन

जैन भाषना-व्यक्ति बहुत प्राचीन है। उसके बारह अंगों (तपस्याके बारह प्रकारों) का विकास भगवान् महावीरके समयमें ही हो चुका था। पाँच सत्र भी उसी समय विकसित हो चुके थे। इस व्यक्तिसत्तरीर विजय द्वारा विजय मनोविजय कषाय विजय और आरम विजयकी अनेक प्रक्रियाओं का अभ्यास किया जाता था। इसे समयका प्रभाव ही कहना चाहिए कि ये प्रक्रियाएँ आज विस्मृत-सी हो रही हैं। एक दिन मैं अपने बनिष्ठ-साधुओं को आमन आश्रिके वारमें बताना था। उस समय एक श्रावक आया। अपने हमारी चरचा सुनी। विषय समाप्त होनापर बोला क्या अपने जैन-साहित्यमें सा आसनोंकी चरचा है? मैंने कहा भगवान् महावीर स्वयं बहुत आसन करते थे। उनके साधु भी बहुत आसन करते थे। जन साहित्यमें आमनोंपर काफी लिखा गया था। पर परस्पर लुप्त होनेके साथ-साथ यह विस्मृत हो गया। प्रकीर्ण रूपमें आज भी काफी मिलता है। उत्तराध्ययनक कालमें उसे संकलित करने और तद विषयक साहित्यका अध्ययन करनेका हमें अवसर मिला। वही इस विषयकी विस्तारसे चरचा की गयी है। उसका साराण इस निबन्धमें प्रस्तुत किया जा रहा है।

जैन-योगकी अनेक शाखाएँ हैं—ज्ञान-योग शान-योग चारित्र-योग स्वाध्याय-योग ध्यान-योग भावना-योग स्थान-योग और गमन योग। यहाँ मैं केवल स्थान और गमन-योगके वारमें ही कुछ बताना चाहूँगा।

स्थान-योग

आपत्तिपुक्तिव भाष्य (१५२) में स्थापन तीन प्रकार बतलाये गये हैं—१ ऊर्ध्व स्थान, २ निषोदन स्थान ३ क्षयन स्थान । आचार्य शिवकोटिन चार प्रकारकी क्रियाओंका निर्णय किया है—१ स्थान त्रिया, २ आमन क्रिया ३ क्षयन क्रिया, ४ गमन क्रिया ।

स्थानका अर्थ है गतिरही निवृत्ति वाली स्थिर रहना । मन्दि पतञ्जलि योगके आठ अंगोंमें तामरा अंग आसन बतलाया है । आसनाका अर्थ है—बठना । यह खड़े बड़े और साते—तीनों अवस्थाओंमें किया जाता है इसी दृष्टिसे आमनकी अवेगा स्थान गठन अधिक अर्थ मूलक है ।

ऊर्ध्व स्थान खड़े रहकर किय जानवाले स्थान ऊर्ध्व-स्थान कहलाते हैं । उनका मुख्य प्रकार सात है—१ साधारण—प्रमाजित सम्भ आदि के सगरे निश्चल हाकर खड़े रहना । २ तविचार—जहाँ स्थित । वहाँसे दूसरे स्थानमें जाकर एक पहर एक दिन आदि निश्चित काल तक निश्चल होकर खड़ा रहना । ३ मनिच्छ—जहाँ स्थित हो वही निश्चल होकर खड़ा रहना । ४ श्युत्सग—कायोत्सग करना । ५ समपा—पराकी समश्रणिमें स्थापित कर (सटकर) खड़ा रहना । ६ एक पा—एक परसे खड़ा रहना । ७ गूढाह्वन—उड़ते हुए गांधी पक्षाका भाँ बाँहाको फगकर खड़ा रहना ।

निषोदन स्थान बैठकर किय जानवाले स्थानोंको निषोदन स्थान या आसन कहा जाता है । उसके अनेक प्रकार हैं—१ निषद्या २ धीरसन ३ पद्मासन ४ उत्कटिकासन ५ गाक्षोदिका ६ मन्दर-मुख ७ कुक्कुटासन ।

योग शास्त्रमें समस्तस्थान दुर्घोषनासन दण्ड-पद्मासन स्वरितिकासन सोपायय श्रौतनिषान हस निषान मरुद निषान आदिका भी उल्लेख है ।

निषद्यान पाँच प्रकार हैं—१ उत्कटिका—पुताका ऊँचा रखकर बठना । २ गाक्षोदिका—गायका दोहेत समय जिस आसनमें बठते हैं उस आसनमें

बठना । ३ समवाययुता - परों और पुनोंको सुगकर भूमिपर बठना ।

४ पर्यका - पधामन । ५ अद्वयका - अद्वयधान ।

इहत कल्पमाप्यमें नियधाने पाँच प्रकार कुछ परिवर्तनके साथ उपलब्ध होने हैं—१ समवाय युता २ गोनिपदिता ३ इति गुण्डिता ४ पर्यका, ५ अद्वयका ।

गयन स्थान सोकर किये जानवाले स्थानोंको गयन-स्थान कहा जाता है । आगम सूत्रमें उसके चार प्रकार मिलन हैं । मूत्रक गयन - सवायन और ऊध्वगयन—ये दो प्रकार उत्तरदक्षों यथामें मिलते हैं ।

१ लण्ड गयन - बरजाएकी भाँति एडियों और सिरको भूमिसे सटाकर शरीरका ऊपर उगकर सोना अथवा पीठको भूमिसे सटाकर नीचे शरीरको ऊपर उठाकर सोना ।

२ उत्तान—धीमा लेटना ।

३ अयामुय गयन - झोंपा लेटना ।

४ एक पाश्व शयन - दायी या बायी करवट लेटना एक परकी सहुचित कर दूसरे परकी उगके ऊपरसे ले जाकर फैलाना और दोनों हाथोंको लम्बा कर सिरको आर फलाना ।

५ मूत्रक शयन - गवामन ।

६ ऊध्वगयन - ऊँचा होकर सोना ।

७ धनुगयन - पेटके बर सीधा लेट दाना परीकी ऊपरकी ओर उठाकर दोनों हाथोंसे उन्हें पकड लेना ।

गमन योग

यह स्थान-यागका प्रतिमा ही है । इसके छह प्रकार हैं—

१ अनुसूयगमन - ठेक धूममें पूर्वत पश्चिमकी ओर जाना ।

२ प्रतिमसूयगमन - पश्चिमसे पूर्वकी ओर जाना ।

३ ऊध्व सूयगमन - सूय मध्याह्नमें हो उध समय जाना ।

४ शिवक सुयोगमन - सूर्ये तिरछा हो उस समय जाना ।

५ अथ ग्रामगमन - जहाँ अवस्थित हो, वहाँसे दूसरे गाँवमें भ्रमण जाना ।

६ प्रत्यागमन - दूसरे गाँवमें जाकर वापस आना ।

आसनाकी धरवा मूलाराधना, ज्ञानाण्ड योगशास्त्र यशस्तिलक, मितगतिश्राववाचार आदि मध्यकालीन ग्रन्थोंमें ही नहीं हुई है किन्तु मन्त्रोत्पत्ती स्थानाग आदि प्राचीन अगसूत्रों तथा दशाधृतसूत्र, ब्रह्मसूत्र आदि छन्दसूत्रोंमें भी हुई है । आसन प्रक्रिया शारीरिक और मानसिक शक्ति का दृष्टिकोणसे बहुत उपयोगी है । उसे पुनर्विकसित करना हमारा उत्तरदायित्व है ।



कायोत्सर्ग और ध्यान

शरीर चञ्चल है और मन भी चञ्चल है। चञ्चलताको छोड़ दें तो जिया भी नहीं जा सकता। वह बहुत बढ़ जाये तब भी जीनमें बढिनाई है। जीवनका सफलता इसी अर्थमें है कि चञ्चलताके साथ स्थिरताका सन्तुलन हो। कायोत्सर्ग और ध्यान दोनों स्थिरताके रूप हैं। कायाकी स्थिरता कायोत्सर्ग है और मनका स्थिरता ध्यान। जो व्यक्ति इन्द्रिय और मनकी दावाराको भेँकर आत्माके साक्षिष्यमें रहना चाहता है वह स्थान, मौन और ध्यानके द्वारा अपनी प्रवृत्तियोंका विमर्जन करता है। स्थान कायाकी प्रवृत्तिका विमर्जन कायोत्सर्ग या वायुगुप्ति। मौन वाणीकी प्रवृत्तिका विमर्जन, वचनगुप्ति। ध्यान मनका प्रवृत्तिका विमर्जन, मनोगुप्ति।

कायोत्सर्ग

कायोत्सर्गका शाब्दिक अर्थ है - शरीरका त्याग। यह हम अच्छे तरह जानते हैं कि जीतजी शरीरका त्याग हा नहीं सकता। शरीरके त्याग का अर्थ है शरीरकी चञ्चलताका विमर्जन शारीरिक ममत्वका विमर्जन - शरीर मेरा है इस भावनाका विमर्जन। प्रवृत्ति और ममत्व के दावों का और मनमें तनाव उत्पन्न करते हैं। वह अनक प्रकारकी मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न करता है।

शरीर-त्यागकी दृष्टिसे शरीरका प्रवृत्ति और निवृत्तिके प्रकार हैं—

कायोत्सर्ग और ध्यान

प्रवृत्ति (भ्रम) क परिणाम

- १ स्नायुप्रभाम स्नायु गहरा कम होना है ।
- २ ल कटक एगिडका स्नायुप्रभाम जमा होनी है ।
- ३ लकिक एगिडका बृद्धि होनापर उ गता बढ़ता है ।
- ४ स्नायुप्रभाम घटान थाती है ।
- ५ रक्तम प्राणवायका मात्रा कम होना है ।

निवृत्ति (आराम) क परिणाम

- १ एगिडका पुन स्नायु गहराम परिवर्तन होता है ।
- २ लकिक एगिडका जमाव कम होना है ।
- ३ लकिक एगिडकी जमाव उगनाम जमी होनी है ।
- ४ स्नायुप्रभाम ताजगा थीनी है ।
- ५ रक्तम प्राणवायुकी मात्रा बढ़ती है ।

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी जायासम कम मरुत्वगूना नी है ।

स्नायविक तनाव और कायासम—एन गरिष्ट और शरीर गहरा सम्बन्ध है । उनका सामंजस्यविहीन गतिम ओ अवस्था उगम होत है बड़ा स्नायविक तनाव है । शरीर और मनकी सन्तुलना सन्तुल रहना प्रवृत्तिकी बहुता या गबुलता मानसिक अवयव — य उसके दुर कारण है । हम जब जब द्रव्यक्रिया करत है अर्थात् शरीरकी किसी दूम काममें लगात है और मन वहीं दूमरी ओर भटकता है तब स्नायविक तनाव बढ़ता है । हम भावक्रिया करना मात्र जामे — शरीर और मनके एक हो काममें संलग्न करनका अभ्यास कर लें ता स्नायविक तनाव बढ़ने का अवसर ही न मिल ।

जा लोग हम स्नायविक तनावक गिकार होत है, य धारारिक भी मानसिक स्वास्थ्यसे धवित रहत है । ये लोग अधिक मायगाली है, ० हम तनावमें धुबल रहने है ।

तनाव उत्पन्न करनमें मयका भा बढ़ा हाय है । अप्पारमवाणियों

उसके छान प्रकार बतलाये हैं—

- १ मनुष्यक भय — मनुष्यको अपना ही शक्ति—मनुष्यके ही शक्ति का भय ।
- २ परलोक भय — मनुष्यका विनाश—परलोक शक्ति के ही शक्ति का भय ।
- ३ अज्ञान भय — घन विनाशका भय ।
- ४ अकस्मात् भय — बाह्यभय ।
- ५ आजीविका भय — आजीविका का भय—इस प्रकारका भय ।
- ६ मरण भय — मृत्युका भय ।
- ७ अज्ञानका भय — अज्ञानका भय ।

य भय मनुष्यके जीवनमें व्याप्त रहते हैं । इनके शरीर के स्नायुविक सन्तानम बुरी तरह आशात होकर अज्ञानिमय जावन जीता है । जिसने अभयका आराधना की है उसका कष्ट नष्ट होता । भयभीत व्यक्ति पल-गन्तमें कष्ट पाता है । जिसने अभयकी आराधना की है वह जीवनमें एक बार मरता है । भयभीत मनुष्य एक निम कर्म बार मरता है । भय और हिंसा का सन्तान है । जहाँ भय है वहाँ निश्चित रूपसे हिंसा है । मनुष्यको अ भय किये बिना अज्ञान ही ही नहीं मरता ।

अनिश्चित भयसे अनेक राग उत्पन्न होते हैं । मनुष्यजानका सिद्धान्त है कि वियोगका भय जागृत होनेपर मनुष्य स्नायु-विकारसे परत हा जाता है । यह दुःखदायक अवस्था का कारण बनता है ।

येक विश्वविद्यालयमें भयसे सम्बन्धित कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं । उन्हें पढ़कर हम समझ सकते हैं कि भय हमारे शरीर और मनका कितना प्रभावित करता है । भयसे म शारीरिक परिवर्तन दृश्ये जाते हैं—शक्ति का घटना, माँझिका लड़ घटना, मुँह का गला सूखना, कानों का हिलना, हृदय के धड़कना और पेटका अन्दर घटना । मनपर भी गहरा प्रतिक्रिया होती है जस—विस्मृति, मूर्छा और पीडाकी लक्षण अनुभूति होता ।

स्थानात् भयसे अनेक भय मनुष्यके शरीर कारण बतलाये गये हैं । उनमें

मयात्मक अध्यवसाय उत्तम एक विधि है ।

रोगके भयसे पीडा बढ जाती है । निम्न रोगाकी अनेक प्रयागत रोगाकी पीडाकी अनुभूति कई गुना अधिक होती है । मानसाचारका रोग पीडित व्यक्तिवापर शिथिलकरणके प्रयाग क्रिये । उसे उत्तरी पीडामें बन्त अंतर आया । भयस स्नायविक तनाव घटता है उससे पीडा तोत्र ही जाती है और कायात्मगसे बन् कम हाता है तब पीडा भी कम हो जाती है ।

क्रोध, अभिमान, माया लाभ राग द्वेष, घृणा शोक आदि मानसिक आवगासे भी स्नायविक तनाव बढ़ता है । कायात्मगसे उन आवगाका समन होता है और फलन स्नायविक तनाव अपा आप दूर हो जाता है ।

कायात्मग कैसे क्रिया पाय ?—कायात्मग खडा, बढी और सोयी तीना मुद्राओंमें क्रिया जा सकता है । सडी मुद्रामें कायात्मग करनेकी रीति यह है कि कायात्मग करनेवाला दोनों हाथोंका घुटनाया और लटका द उन्हें उला छोड दे । पराकी सम रखान रखे और दानों पजामें चार अंगुलका अंतर रखे । शीघ सारे अंगोंका स्थिर रखे और शिथिल करे । किसी भी अंगस तनाव न रखे ।

बढी मुद्रामें कायात्मग करनेवाला पचासन या सुखासनमें बढे । हाथा की या ता घुटनापर टिकाय या बायीं हथलीपर दायीं हथली रखकर अक में रखे । सब अंगोंका स्थिर और शिथिल बना ले ।

सोयी मुद्रामें कायात्मग करनेवाला पहले साधा छट जाये । तिरछे लेकर पर तबके अध्यवसायको पहले तान फिर क्रमश उद्धे शिथिल करे । हार्मा तथा परोकी परस्पर सटाय हुए न रखे । द्वास उच्छ्वास समभाषम ल किन्तु लम्बा ले । मनका द्वास उच्छ्वासमें लगा एकाग्र या विचार दूय हा पाय ।

मनकी दान्त व स्थिर करनेके लिए धारीरको शिथिल करना बहुत आवश्यक है । प्रयत्नस श्चलता बढ़ती है । स्थिरता अप्रयत्नसे आती है ।

शरीर उतना गिथिल होना चाहिए जितना किया जा सके। यह प्रतिदिन आध घण्टा गिथिल हो सब ताँ मन अतन आप गाँत हान लगता ह। गिथिलाकरणक समय मन पुरा खाला रहे - कोई चिंतन न हो जप मा न हो। यह न हो सक सा आ अहम् जस किसी शब्दा ऐसा प्रवाह हो कि बीचमें कोई दूसरा विकल्प न आध। श्वासकी गिनती करनसे यह स्थिति सहज ही बन जाती ह।

कायोसर्गाका कालमान—कायात्सर्गकी प्रक्रिया बृहस्पत नहीं है। उससे गारारिक विधाति और मानसिक गाति प्राप्त होतो ह। इसलिए यह चाहे जितन लम्ब समय तक किया जा सकता ह। कमस कम पन्ह बास मिनट सा करना हो चाहिए। कायात्सर्गमें मनको श्वासमें लगाया जाता ह इसलिए उसका कालमान श्वासकी गिनतीसे भी किया जा सकता है, जैसे सो श्वासाच्छ्वासका कायात्सर्ग दो सो तीन सो पाँच सो, हजार श्वासाच्छ्वासका कायोत्सर्ग आति आति।

कायोत्सर्गाका फल—कायोत्सर्गका मुख्य फल ह - आत्माका साभिध्य प्राप्त करना। उसका गौण फल ह—मानसिक सतुलन बौद्धिक विकास और शारीरिक स्वच्छता। मानसिक स्वच्छता, स्नायुनभाव व कष्टसे उत्पन्न रोगाके लिए यह अमूल्य रसायन ह।

आचार्य भन्वाहुने कायात्सर्गक पाँच फल बताय है—

१ दहिक जडताका शुद्धि—श्रेष्म आदिके द्वारा देहमें जडता आती ह। कायोत्सर्गसे श्रेष्म आति दोष मिट जात ह। अत उनसे उत्पन्न होन वाली जडता भा नष्ट हो जाती ह।

२ बौद्धिक जडताका शुद्धि - कायोत्सर्गमें चित्त एकाग्र होता है। उससे बौद्धिक जडता नष्ट हा जाता ह।

३ सुख दुःख विविधा - सुख दुःख सहनकी शक्ति प्राप्त होती ह।

४ गुद भावाका अभ्यास होता ह।

५ ध्यानकी योग्यता प्राप्त होती ह।

ध्यान

धननाक का रूप है — चञ्चल और स्थिर । चञ्चल चेतनाको चित्त और स्थिर चेतनाका ध्यान कहा जाता है । स्थिरता का रूप ध्यान है—एकाग्रता और निरोध ।

एक वस्तुमें चित्तको सम्पन्न करनेका नाम एकाग्रता और वर्य सबका चित्तन प्रायः करनेका नाम निराध है । चित्तका एकाग्रता और चित्तका निराध य दाना ध्यान कहलान है ।

ध्यानका विधि—ध्यान करनेसे पहले धारोको स्थिर करें । वह बिलकुल न हिल डल । फिर दो ताग मिनिट उस सूचना दें कि वह शिथिल हो रना है । फिर यह सूचना दें कि श्वास शिथिल हो रहा है । धारो और श्वास दोनो शिथिल हो जायें सब यह सूचना दें कि मन शिथिल हो रहा है । जब मन शिथिल हो रहा हो, उस समय या सो चित्तन सबका बन्द कर दें वसा न कर सकें ता अहन् मिद्ध आदि जा भी इष्ट हो उस धारका या कर उसक अधपर मनको एकाग्र करें । जो ध्येय है उसे प्रत्यक्ष देखनेका प्रयत्न करें । जपमें या की पुनरावृत्ति की जाती है । किन्तु ध्यानम उसकी पुनरावृत्ति नहीं या जाता, उनके अधको प्रत्यक्ष करनेका अभ्यास किया जाता है ।

शिवराज राजाका मन्त्री था । उसे बहुत सम्मान प्राप्त था । एक दिन राजाका उसपर स देह हो गया । उसे मन्त्री पसे हटा दिया । सारी सम्पत्ति छान ली । अब वह धन और सम्मान दानासे दरिद्र हा गया । अपने कुटुम्बका लकर वह बहसि चल पडा । मागम एक मुनि मिले । व ध्यान मुनाम स्वडे थे । मन्त्रीन उन्हें बन्दना की । मुनिन ध्यान पूण किया । मन्त्रीन पूछा गुहदेव ! सचित्त कम लीग हों, वसा उपाय बतलाइए । मुनिन कहा दुःख निश्चयके बिना वसा उपाय हाय नहीं लगता । मन्त्री बोला गुहदेव ! कमका विपाक देख चुका हूँ । क्या अब भी दुःख निश्चय नहीं हागा ? मुनिने उसकी प्रबल इच्छा देखी और कहा,

ध्यानमें सब कुछ दूर हो जात है । पर यह कैसे किया जाय भगवन् !—
 मन्त्रों पूछा । मुनिने कहा, ध्यान करनेवाला पूष या उत्तरका और मुँह
 बंद कर बैठे । अग्नि या हा मुँही हुई हा या अथस्तुती । व यदि मुँही हा
 हा मानसिक कल्पनामें उहू वही नामाग्रपर के द्रव किया जाय ।

ध्यान कालमें आमन कष्टनायो नों किन्तु सुखात्म होना चाहिए ।
 ध्यानके लिए सामान्यत एमानन परमानन कायात्मगर्मानन आदि आसन
 सुमाय पर्य हैं । किन्तु य ही आसन जान चाहिए एसा आग्रह नहीं ह ।
 आचाय सुभवदन निष्ठा है — जिस आसनमें बठनेपर मन निश्चल हो,
 य ही आसन करणीय ह ।

यन कन मुग्धासाना विदुष्युर्निश्चल मन ।

तत्तद्व्य विधेय स्थान् मुनिभिव-धुरामनम् ॥ (नानाणन)

ध्यानका काल—स ह्यष्ट करनके लिए एक उत्तमहरण प्रस्तुत है—
 पुरान खमानकी बात ह । मगध दगम दरवापुर नामका नगर था । वहाँ
 ना मित्र थे । एकका नाम राम था । बह वनियका बटा था । दूगरे
 का नाम था नागन्त । वह ब्राह्मणका बटा था । उन दानामें बहुत प्रेम
 था । वे मुषम रह रहे थ । एक दिन वहाँ रात्र विद्वाह ना गया ।
 धारा और लू मच गयो । तब य दोनों बहूसि दौड और नगिणापयकी
 ओर घले गय । एक बार व लोना काठ सानक लिण जगल गये । वों
 महायल नामक साधु कायात्मग मुग्धम सड थे । ध्यानरान हानके कारण
 व पवतरी मीति अडाल थ । उहान साधुको देखा । यह जीवनम पहला
 ही अवसर था । वे उ हें अपलक दक्षन रहे । घोड़ी डेर रा एक बडा
 सा सौं वित्तमें-स निकला और सोध माधुक पास जा पहुँचा । उहें
 इस वापस विलमें पुन गया । साधु अब भी बसे हा सडे थ । ध्यानसे उरा
 भी विचलित नहीं हुए । उनक चरीरमें विष भा नहीं ग्याया । राम
 और नागन्तकी बहुत आश्चय हुआ । साधुन कायात्मग पूण किया । व
 साधुके पास गय वना की ओर बोले—भगवन् ! सौंन आपका काठ

तो आपपर उसका असर नही हुआ ? आप इस प्रकार कायात्मगमे रहते हैं क्या आपका सर्जि गरमोस कष्ट नों होता ? साधुने कहा महानुभावो ! जो ध्यान कौष्ठमे स्थित होता है वह बाहरी स्थितिमे प्रभावित नहीं जाता । सर्जि गरमा आत्तिसे घाघित नहीं होता । यह मरा अनुभव है ।

इस ध्यान कौष्ठमे शात लूरका काइ असर नहीं होता और न तब हवास उल्लित अग्नि भी अपना प्रभाव टिया पाती है । भयकर कालील घर्ता बाधा नही डाल सक्ता और साँप आदि विपले जातु वरी पोडा उत्पन्न नहीं कर सकत । इन शारीरिक कष्टोकी क्या बात करत हो तुम ? यहाँ मानसिक कष्ट भी नों पहुँच पात है ? ईर्ष्या, विषा, शोक आत्ति जिनका मानसिक कष्ट है वे सब ध्यानलीन व्यक्तिज सामन निर्बोड घन जाते हैं ।



ध्यान

एक ही अवस्था होती है—अज्ञान और विज्ञानमय । अज्ञान एक अवस्थाकी मन और विज्ञानमय अवस्थाकी ध्यान कहा जाता है । ध्यान करते समय मन सब-सोमे भर जाता है । एक-एक कर पुरानी स्मृतियाँ उभरने लग जाती हैं । सारा प्रश्न होता है इसका क्या कारण है ? जब माँको प्रवृत्ति होता है तब उनका चबलता नहीं होती बिलती उनको स्थिर बनना प्रयत्न करावना होता है । हम पहलायें जायें तो पायेग कि खेतना खबल नहीं होती । मन खतावा एक अंग है वह मया कहे खबल हा मकना है । वह वृत्तिवारे धारण खबल होता है । वृत्तियोंका विनना धार हाता है उनना ही वह खबल होता है और वृत्तियों बिलती धार या पीय होता है उनना ही वह स्थिर होता है यानी ध्यान होता है । तात्पर्यका जल स्थिर पहा है । उसमें एक डला पेंवा और वह खबल हो गया । यह खबलता स्वाभाविक नहीं किन्तु बाह्यके सम्पर्के उत्पन्न है । ठीक इसा प्रकार मनका खबलता भी स्वाभाविक नहीं किन्तु वृत्तियोंके सम्पर्के उत्पन्न होती है । मनकी खबलता एक परिणाम है । यह हेतु नहीं है । उनका हेतु है — वृत्तियोंका जागरण ।

वृत्तियों दो प्रकारकी होती हैं — सत् और असत् । अगन्ते सत्की मार जाना पला कारण है और दूसरा कारण है असत्का धारण करना । असत्में मन खबल रहता है सगुने धारत और असत्की धारण करनपर वह अतिमात्र धारत हो जाता है । इन धारा प्रक्रियाकी मनोगुप्ति कहा जाता है । गुप्ति मनकी तीन अवस्थाएँ हैं — १ बलना विमुक्त २ सुगन्ध

प्रतिष्ठित, ३ आत्मराम ।

विमुक्त कल्पनाश्रम, समस्तेषु प्रतिष्ठितम् ।

आत्मराम मनश्चक्षि, मनोगुप्तिस्त्रिधोदिता म

कल्पनाश्रम मन्त्रा एक साथ छाली नहीं किया जा सकता ।
उमे गसन कल्पनाश्रमि मुक्त करनर लिए सत कल्पनाश्रमि आत्मराम
लिखा जाता ह । इन कल्पनाश्रमि विमद धनन प्राचीन साहित्य
भिलता ह ।

कल्पना करें कि हृदय कमल है । उसके चार पत्र ह । बीचमें ए
कणिका ह । चार पत्रों और कणिकापर क्रमण अ, सि, आ, उ, ष
लिखा हुआ ह । प्रत्येक अक्षर उपातिमय ह और वह प्रदक्षिणा करता ह
धुम रहा ह । यह कल्पना पुष्ट होगी ता दूसरो कल्पनाएँ अपन प्राप मिली
ही जायेंगी ।

६ नामाद्य दोश्राय दो वान और एक मुख — ये सात रश्मि है
इनपर क्रमण ण भो अ रि ह ता ण — इस मन्त्ररूपके स
ध्यान किया जाय । वण और स्थानके ध्यान साथ साथ हा । मने ।
नेय कल्पनाश्रमि मुक्त हो जाता ह । इस प्रकार सैकड़ों उपाय साधना
सम्भी परम्परामें प्राप्त होत हैं ।

समाप्त प्रतिष्ठित वृत्तिपाँ दवा रन्ती हैं । व निमित्तका योग पा
उत्तजित होती ह और उभर आती ह । उनकी उत्तजनाका बहुत र-
निमित्त ह विषमता । जब जब मनम विषमताके भाव आते ह तब-तब
वह स्वचा अधीर और विविष्ट हो जाता ह । अमुक व्यक्तिने मेरी
सम्मान किया ह और अनुबने अपमान । सम्मान और अपमानकी स्मृति
होत ही मन चञ्चल हो उठता ह । किन्तु जिसका मन सम्मान और अपमान
दोनोंका ग्रहण नहीं करता तब दोनाकी आत्मासे बाह्य मानता है उसका
मन सम्मामें प्रतिष्ठित रता ह । उसे सम्मान और अपमानकी स्मृति ही
नहीं हानी तब वह उसके कारण चञ्चल अधीर या अगाठ बत हा

मकता है ? इस प्रकार राग द्वेषत्रयित त्रितयी विषमताएँ हैं, उनका प्रदूषण नहीं करनवाला मन समतामें प्रतिष्ठित होता है ।

आत्माराग यह गुप्त मनकी तीवरी अवस्था है । इसमें चेतनाके अतिरिक्त कोई बाह्य आलम्बन नहीं होता । मन आ नामें विन्नोत्त हा जाता है । वह कपाय (बाहरी रगा) स मुक्त होकर गुदापवाग (गूढ चेतना) में परिणत हो जाता है । इन स्थितिका इन शा' में भी समझाया जा सकता है कि यहाँ गुढ चेतनाम भिन्न मनका कोई अस्तित्व ही न । रहना ।

ध्यान और गूयता ध्यान अवस्था गूय अवस्था है किन्तु इस लक्ष्यका अनेकानेकी भाषामें सम्यक्ता चाहिए । ध्यानमें त्रितयी बाह्य विकल्पोंकी गूयता हाती है उनना ही आदिमक जागरूकता बढ़ जाता है । इसीलिए आमा गूयागूय स्वभाव है । प्रश्न उठता है कि यदि माकी ग म करता हो ध्यान है तो फिर नीं भी ध्यान है । भीमें आंतरिक जागरूकता नही रहता । वह स्वय एक वृत्ति है इसलिए वह ध्यान नही है । विचार गूयना भी ध्यान नहीं है । इसे ध्यान माना जाय तो मूर्च्छाकी भी ध्यान मानना होगा और वट ध्यान नहीं है । वहाँ चेतनाका विस्मृत है । ध्यान व होता है जहाँ चेतनाकी जागृति हो ।

ध्यान तदात्मकता : ध्यान करनवालेकी तदात्मक होनका अग्रगण्य टालना चाहिए अर्थात् त्रितयका ध्यान करे उसका साथ तदात्मकता स्थापित करना चाहिए । त्रिपाके साथ भी तदात्मकता ही तो वह भी ध्यान हो जाता है । जा बाउ उममें मनका योग साथ रह ता वह बालना भी ध्यान है । जा करे उसमें मनका योग साथ रह ता वह करना भा ध्यान है । तमपनास जो किया जाता है वह सद्य फलशयी होना है । ध्यान करनवाला ध्ययका सम्प्राप्तिके लिए अरने गराय व मनका गूय बना लेता है । एसा करनवर ध्यय और धरातामें एकात्मकता हो जाना है । इसीका याग गास्वके आचार्योंन एकीकरण समाप्तीभाव समापत्ति या समाधि कहा है ।

ध्यानकी सफलताके लिए चार कारणोंपर ध्यान देना चाहिए—

- १ मुख्यदेश — ऐसे मुख्य साधन-स्थान लेना चाहिए, जो अनुभवी हो।
- २ धृष्टा — अपनी क्रियाके प्रति आत्ममें दृढ़ विश्वास होना चाहिए। प्रक्रिया ठीक हागी तो अवश्य परिणाम लायगी, ऐसी निष्ठा होनी चाहिए।
- ३ सतत अभ्यास — आज क्रिया बल नहीं ऐसी अनिश्चितता नहीं होनी चाहिए। अभ्यास सतत करना चाहिए।
- ४ मनकी एकाग्रताका दृढ़ अभ्यास लेना चाहिए।



जीवनव्यापी महत्त्व है। कोई ज्ञानकी पगड़ी भार होने-जसा है। भार हर कोई ही सकता है।

जगत् सरो घदण भारवाही भारस्त भागी न हूँ चंगास्त

विद्यार्थी आराधनाके माय दान श्रद्धा और आचारकी आराधना अपेक्षित है। ऐसा लगना है आज ज्ञानकी आराधनासे भी दानकी आराधना अत्यावश्यक है। श्रद्धाकी शृंगला टूट गयी है। मनुष्यकी अपनपर भी विश्वास नहीं है। इसीका ही परिणाम है कि अनुशासन हीनता, सञ्जमलता और मानसिक अस्थिरता बढ़ रही है। इससे मुक्ति पानके लिए श्रद्धा और एकाग्रता परम अपेक्षित है।



भाव क्रिया और अनावेग

“शुचा अमुनिषो मुनिषा सदा जागरते”

जो मुनि नहीं होते वे गन्ध सीत रन्ते हैं और मुनि सदा जागते रहने हैं। यह सतत जागण ही भाव क्रिया है।

प्रत्येक प्रवृत्तिके तीन साधन हैं—मन, वाणी और शरीर। इनमें एक चेतन और शेष दोनों जड़ हैं। वाणी और शरीरकी प्रवृत्तिमें मन साथ रह तो वह शरीर बच जाती है अथवा वह निर्बल ही होती है। आचनकी प्रत्येक प्रवृत्ति भाव क्रियात्मक होना चाहिए। हम चले तो हमारा मन चञ्चलमें लगे, हम बैठे तो हमारा मन बदनमें रह। इसी प्रकार खाने तो खानमें थोले तो बोलनमें और जो कुछ भी काम करें उग्रामें मन बराबर साथ दे। 'उत्तराध्ययन में चञ्चलकी विधि बतलायी है वह भाव क्रिया है। वहाँ कहा गया है जब तुम चली तब मनको इन्द्रियाके विषयसे हटा ला स्वाध्यायसे हटा ला। एकमान चञ्चलकी ही सामन रखो। चञ्चलमें हा मनको केन्द्रित कर चना। एक क्रियामें शक्ति लगानसे वह निरर जाती है अथवा वह विरर जाती है।^१

जो करो वह समय हाकर करो चित्तको वहीं लगामो। लेनाको वहाँ नियोजित करो अध्यवसाय बैसा ही बनाओ। उसके लिए समर्पित

१ इन्द्रिये निवृत्तिता, सम्हाय चैव पचन।

समुत्था तत्पुरस्कारे स्वउत्था इति ६५ ॥ उत्तराध्ययन २४८।

२ उच्छिन्ने तन्मये क्लेशेते तदग्रमन्त्रसिद्धे तत्तिस्वग्रमन्त्रसाधये।

तद्द्वाराउत्ते च पियकरणं तन्भावणाभाविष ॥ अनुयागशास्त्र २८।

हो जाया, उसीमें उपयुक्त हो जाया तुम्हारा क्रिया भाव क्रिया हीमा
 सञ्चोव क्रिया हायो । अथवा तुम इत्य क्रिया—निर्जीव क्रियात विपक्षे
 रहाय । क्रियाके साथ मनका सादात्म्य होनेस भाव क्रिया बन जाती है ।
 इसीलिए आचार्य हरिमश्ने सभी क्रियाओंको योग माना ह । अहात्मक
 मुनि जो एक साधक लिए भा प्रमाद नहीं करता की तरह सतत आव
 स्वता कठिन ह फिर भी भाव-क्रिया आवश्यक ह । इनका अन्वय
 वित्त वस्तुको रोकनका एक साधन ह । हमारा अधिक समय भूत और
 भविष्य ल जाता ह । हम वर्तमानमें रहना सीखें । भोजन करते समय
 अतीतका या और भावीका योजना विमोहम घूमता है । वर्तमानमें रहना
 ही भाव क्रिया ह और वह साधनाकी आधारशिला ह ।

अनावेग आवगमें मनुष्य अपनको परिस्थितिके हाथा सौंप देता ह ।
 एक व्यक्ति पहले आवगम नहीं जाता पर दूरदक कुछ कहनपर आवगम
 अपनका बचा भी नहीं पाता । अनेको निर्णय बतात हुए जाता ह—
 मैं पत्न आवग नहीं किया । क्या चाहे किया वह आवग नहीं है ?
 कबल ममदका अन्तर रटा आवग ता है ही । पहले आवेगमें न आना
 अच्छा ह पर पीछ ना न करेगा क्या हानिप्रद ह । जेताको बसा करनकी
 प्रवृत्ति मानवीय दुबलताके कारण सहज अगती है । पर साधक साधनाका
 पथ लेकर चलता ह इसलिए उसे रोकनका अभ्यास करना चाहिए ।
 अभ्यासक साधन य ह—१ बार्द अग्रिय बाल बहु ता उमका तत्काल
 उत्तर न दें । आवगसे रकमें उत्तरना आती ह उमसे गरमी मड़ती है
 इसलिए उम समय स्वासको बन्द कर लेना चाहिए । २ उत्तर इनपर
 नियन्त्रण न हो सके तो बहाने तत्काल उत्तर अथवा चला जाना
 चाहिए ।

यह विश्वास लेकर चलना भूठ ह कि—

सीमा पढ्या स्वभाव, न छूट जाव स्यू ।

नीम न मीठा होय सीधो गुड़ धीव स्यू ॥

यां यह विधान हो ता अरिष बरों लिवा जाता है । अरिषका
 अर्थ है—स्वभाव परिवर्तन । माधना इमन्ति को जाता है कि उतन
 स्वभावमें परिवर्तन जाता है । स्वभावम परिवर्तन न आय ता माधनाका
 कोई मूल्य नहीं है । अरिषमें दंड आदिवा हासन स्वभावम परिवर्तन
 अवश्य जाता है ।



मोह व्यूह

पुराने जमानेमें गढ़क प्रांगणमें व्यूहकी रचना की जाती थी जस गढ़क व्यूह गढ़क व्यूह आदि आदि । व दुर्जेय या अजेय होते थे । उन्हें साड बिना शत्रुकी सना आगे नहीं बढ़ सकती थी । साधना भा एक युद्ध ह । उसका प्रतिपक्षा ह मोह । उसका व्यूह रचना बड़ी विकट ह । उस सोड बिना कोई साधक आग नहीं बढ़ सकता । उसे तात्नस पहले उसकी व्यूह रचनाको समझना होता ह ।

कल्पना कीजिए—मोह एक रायाध्यय ह और मिथ्याज्ञान उसका प्रधान मन्त्रा । उसके लो पुत्र ह ममकार और अकार, ये दानो सनापति ह । जो आत्मान भिन्न पत्था ह उनमें आत्मीयताका अभिनिवस होता ह वह ममकार ह । जैसे — मेरा मकान मेरा बेटा मेरा परिवार, मेरा मित्र आदि-आदि । यह माह व्यूहका प्रबल रक्षक ह । कम जनित अब स्याआमें अपना आरोप करना अहकार है । जसे मैं घनवान हूँ मैं अधिकारी हूँ आदि-आदि ।

आत्मा निरुपाधि ह । उसके पीछे कोई उपाधि नहीं ह । वह न किसीसे छोटा ह और न किसीसे बडा । उसमें छोटे बड़का भेद नहीं ह । वह न किसीका सेवक है और न किसीका स्वामी । उसमें स्वामी-सेवकका भेद नहीं है । छोटा-बडा स्वामी-सेवक व सारी उपाधियाँ ह । जितनी उपाधियाँ हैं व सब बघनमें स निकलती हैं । मुक्तिमें-स कोई उपाधि नहीं निकलता । पूणताकी आर बदनवाला कोई उपाधि नहीं आहता । उपाधि आनवाला हमशा अपूणताकी आर बढ़ता ह । अहकार उस

मोह-भ्रूणको छोटकर आग में जान दगा । मनकार और अहंकारके राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं । त्रिनक्षत्र प्रति अहंकारका मनकार होता है उनमें उनका राग उत्पन्न होता है । त्रिा अहंकारप्रति प्रति अहंकारके मायाका हामी है उनमें भा राग होता है । मनकार और अहंकारके मायाका उत्पन्न रागप्रति द्वेष उत्पन्न होता है । इस प्रकार मनकार और अहंकारके राग और द्वेषकी सृष्टि होती है ।

राग और द्वेषके बचावका उपाय होता है । बचावके चार अंग हैं—
 १. ज्ञान । २. ध्यान । ३. साधन । ४. साधना ।
 ज्ञान मान माया और मोह । साधनके मायाका भावनाका भाव और साधन उत्पन्न होता है । द्वेषकारके भावनाके ज्ञान और ध्यानका उत्पन्न होता है । इन बचावके मायाका सृष्टि होता है—मन रोग पुनः विचार आदि उत्पन्न होते हैं । इन आन्तरिक प्रकाशका मन बचन और शरीर प्रवृत्त होते हैं । प्रकृतिक विद्या आदि राग उत्पन्न होता है । उपाय बचन होता है । बचनके पुनः जन्म होता है । शरीरका स्थिति होता है । इन्हींके निवृत्त होती है । इन्हींके विषयाका उत्पन्न होता है । उनमें राग और द्वेष उत्पन्न है । राग-द्वेषके बचन और बचनके लिए जन्म—इस प्रकार यह भ्रूण बचता जाता है । इसका अभी अन्त नहीं होता ।

इस अवस्थाके मायाका अन्त जगत्में रहते हैं तबतक मायाका गति नहीं सुलेगा । वह तब सुलेगा जब हम स्वयंशरीरके ऊपर उत्कर निम्नके जगत्में प्रवृत्त पायेंगे । वही हमारा ज्ञान मिथ्या नहीं होगा । मिथ्याज्ञानके मिथ्याज्ञानका आवरण नहीं पड़ सकता । किसी जमानकी बात है—एक राजाने एक ही जमानका निर्मात्रक विद्या । ग यामी नगरमें पुनः ता उत्पन्न दत्ता—उसके मायाके बहुत बड़िया कालीन विद्याके गये हैं । वह अपने मायाके घोडा हटा और पासेके गड़ेमें जा गिरा । सावक लामाने हाथ दबड़ उस बाहुर निहाल विद्या । उसके पैर काधहम सा गये । लोकाके अनुरोध करनवर भी उत्पन्न पर नहीं पाये । वह बाबूदस सन परसि ही कालीनापर चलता गया । राजाने यह दत्ता ता उससे रहा नहीं गया । वह संन्यासीके

पास आया और बोला महाराज ! यह क्या कर रहे हैं ? स पासा मोटा,
 राजाक अहंकारका चूर कर रहा है । राजान मुसकानक साथ कहा
 महाराज ! क्या अहंकारस अहंकारका चूर किया जा सकता है ?

अहंकारस अहंकारका चूर नो किया जा सकता तो विद्यागानस
 विद्यागानका वस पढाया जा सकता है ? माह श्रुतका उाइनका मरस
 पला उपाय है—सम्पत्तान । हमारा गान सम्पत्त हा, दान सम्पत्त
 हा मायताए सम्पत्त हा और धारणाए सम्पत्त हा सभा हम ममकार
 और अहंकारका सुष्टका नियंत्रित कर सकते हैं । इनपर नियंत्रण पा
 लनक बाद हम उा पशुधोका अपना जो मानेग, जो आत्मास भिन्न है ।
 हम उन अवस्थाआम अहंका आराप नही करेग जो आत्माका अपनी नही
 है । इतना होनेपर राग-द्वेष कषाम आनि वस मूरक्षान रूपेग जब मूर्त्त
 जलका सिक्न किय बिना फूल कुम्हला जात है । उनक मूर्त्ता जानस मन
 अपन आप लकाए स्थिर या निरुद्ध हो जाता है । इसीको हम ध्यान कहते
 हैं । ध्यान हठयागत प्राप्त नही किया जा सकता है । उसकी प्राप्ति अन्त
 स्तरका शुद्धिसे शानी है । जम-जसे ध्यान गकिनगाली बनता है, वस-वसे
 मात्र-श्रु. छिन्न भिन्न जाता जाता है । एक निम ध्यान उस के-त्र बिन्दुपर
 पहुँच जाता है कि उसका अजेव वचितस परास्त हाकर माहका गृह पूण
 रूपेण टूट जाता है ।

आवेग और उप-आवेग

मानसिक आवेग एवं उपाय-प्राप्तिकार अनेक प्रकार हैं। आवेग चार हैं—१ क्रोध, २ मास ३ मा । ४ शोक । ये भगती-अरनी मात्राके अनुसार मानसिक प्रभावित करत हैं । मात्रा भन्ने अनुसार य मकरतया चार भागमें विभक्त होत है—१ अल्प २ तीव्र ३ तीव्रतर ४ तादृशम् ।

तादृशम् शब्द आत्मीय-व्यक्तिगत मन्त्रण-दुष्टकाणम विचार ला देत हैं । तादृश क्रोध आदि आत्म नियन्त्रणका शक्तिका छिन्न मिश्र कर बालत है । उक्त क्रोध आत्मीय आत्म नियन्त्रणका शक्तिर उच्चतम विकारमें बाधक हात है । अल्प शब्द आत्मीय-व्यक्तिका पुनः शीतलणम् ला हान देत ।

मय, शोक पुनः हास्य रति अरति और काम विचार—य उप-आवेग है । य मा-व्यक्तिगत जीवनका बहुत प्रभावित करत ह । शब्द आत्मीय शक्ति तीव्र हाता है इसलिए य आवेग है । य शक्तिर शारीरिक और मानसिक स्थितिके प्रभावित करनक अतिरिक्त उपाय आन्तरिक गुणा — मन्त्रण-दुष्टकाण और आत्म नियन्त्रणका ना प्रभावित करत हैं । मय आत्मीय उप-आवेग अत्यन्त आन्तरिक गुणाको उतना प्रत्यन्त प्रभावित नहीं करत जितना शारीरिक और मानसिक स्थितिका करत है । उनको शक्ति अत्यन्त कम हाता ह इसलिए य उप-आवेग है । आन्तरिक गुण में हानवाला प्रभाव बहुत दुर्लभ हाता ह अतः वह मनुष्यभावसे पहचाना नहीं जाता । आवेग और उप-आवेगका शरीर और मनपर जा प्रभाव होता है, उसको जानकारी हमें विदितता शास्त्रकी पुरानी और नया

सभी भावाओं के साहित्य द्वारा प्राप्त होती है। योग शास्त्रमें भी इनकी चरना मिलती है। मुख्य उपाकरण इस प्रकार हैं—

मानसिक चिन्ता निराशा भय काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्, मात्स्य आदि मानसिक आवेगों से उत्पन्न होता है। मन चिन्ता क्रोध मत् मोह मात्स्य आदि मानसिक आवेगों से उत्पन्न होता है और स्थावर रज्जुकारवा रोग उत्पन्न होता है। मानसिक चिन्ता अशांति, उन्मिन्नता और क्षामके कारण क्षाम रोग उत्पन्न होता है। ईर्ष्या और द्वेष यकृत और तिल्लीको प्रभावित करते हैं। क्रोध और घृणासे गुर्मे विकृत होने से तथा रक्त विपला बनता है। चिन्ता और उन्मिन्नतासे फफुड दुबल होते हैं मस्तिष्क विकृत और रक्त दूषित होता है। विषय-वासनाकी प्रबलतासे शीघ्र विकार—प्रमेह आदि उत्पन्न होते हैं। ईर्ष्या भय, क्रोध लोभ, दय प्रद्वेष आदि मनोविकारोंका दशमें क्षाम जानबाल अज्ञानका समुचित परिपाक नहीं होता।

इनकी उत्पत्तिके कारण यह है कि ये मानसिक आवेग शरीरकी रोग प्रतिरोधक-शक्ति को नष्ट कर डालते हैं। हमारे शरीरमें दो पाचक रस रहते हैं—क लवणाय - हायड्रोक्लोरिक अथ पेप्सोन।

द्वेष, ईर्ष्या भय गोक क्लेश निन्दा घृणा आदि मानसिक आवेगोंसे प्रभावित अवस्थामें पाचक रस अल्प मात्रामें बनते हैं। इसलिए शरीर और मन क्षामितहान हो जाते हैं।

चिन्ता शोक, भय क्रोध, लोभ आदिसे अरुचि और अजीर्ण रोग होता है—

“वातादिभिः शोकमयातिष्ठोम क्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः ॥
भ्राघका स्युः । (चरक चिकित्सा स्यात्

- १२६।१२५)

“मात्रयाप्यम्बुवद्वन पथ्य चाष्टं न जीयति ।

चिन्तागीकमयत्राप्य दु र्गमव्याप्रवागरीः ॥”

(चरकसुद्धिपाठ - २)

बिदा भांगि सामागिक मात्र कम होता है और यथा तदृ ता
ता है । इगारा ज्ञान प्रवृत्ति-वर्णन है । जहाँ प्रवृत्ति जाती है वहाँ
व होता है । वहाँ प्रकारका होता है—शारीरिक और मानसिक ।
शारीरिक का तरह प्रकारका है—१ वात (ऊष्णवात अघावात)
२, मुख छोड़ व्याग नूय निग वात धमशनि वाग अगाई अघ
नन और सुभ । हाहा वग धारण करनन राग उत्पन्न हात है इगल्लिए
मका निरोध है ।

धाराधिक वग, शी धारण करनन राग उत्पन्न हात है और मानसिक
भाकी धारण न करनन शीघ उत्पन्न हात है । इगल्लिए उनके निरोधका
वधान है कहा है—इउ लाहन और परलोहमें हित शान्तवाता अघि
वेन्दिय हाकर माभ र्द्वारा न्य मात्रमय राग आदि वगोंका
निरोध कर ।^१

एलोयमें रागके प्रयाग हनु बीगानु ह । होम्यापवाका सिद्धान्त
मने भिन्न है । इगल्ल अगुमार उसका मूल मनस भा आगे है । आयुर्वेदमें
ग वार प्रकारके मान गय है—१ भागतुल्य २ शारीरिक ३ मान
३ ४ स्वाभाविक ।^२

१ वैशम्पैय चरकसुद्धिपाठ विषद्वयवका सुधान् ।

निद्राकासकम इवास्तवगभासुन्दरिस्तव ॥ अटल्लिद्वय एत स्थान भा १

२ चारदेसु सग वगार् दिाधी मात्र ५६ ५ ।

सानध्यावेकासुपरगादीनां त्रिाद्विय ॥ अटल्लिद्वय एत भा २४

३ सुपुत अगुमान १।३२

४ अत्रुतिा - अगुन्दव शारीरा मानसा स्वाभाविकारवति ।

आगतुक् रोगका हेतु बाह्य उपकरण—गन्ध आदि है। शारीरिक रोग होन, मिथ्या और अतिमात्राम प्रयुक्त अन्न-पानके कारण बुद्धि (या विषम) हृण वात पित्त कफ रक्त या इनके मिश्रणसे उत्पन्न हात है। मानसिक राग क्रोध शाक, भय हय विषा ईर्ष्या अमृया दय, मात्स्य नाम लाभ आदिसे तथा इच्छा और द्वेषक अनक भेदसे उत्पन्न हात ह। स्वाभाविक रोग भूष प्यास युत्ताग मृत्यु निद्रा क्षान्ति ह। रोगका एक हेतु यम भी माना जाता ह। कमज रोग किंसा बाह्य हेतुक बिना भी प्रकट हो जात ह। कमज राग हमारे लिए पराग है। स्वाभाविक रोग जीवनका सहज क्रम ह। आगतुक रागका जा व्याख्या की जाती ह वह आकस्मिक घटना ह। रोप रहते है—शारीरिक और मानसिक। बाहरम गरीरम आकर राग उत्पन्न करनेवाले अणुशो या काटाणुभासे जा राग उत्पन्न होते ह वे भी आगतुक रोग मान जाने चाहिए।

गारीरिक मानसिक और आगतुक—इन तीनों प्रकारके रोगमें मुख्य रोग मानसिक ह। तात्पर्यकी भावाम कहा जा सकता ह कि रोगमें मुख्य हेतु आंतरिक वाय कोष आन्ति ह।

मनका स्थिर स्थिति ध्यानावस्थामें बाहरी प्रभाव बहुत कम होता ह। रोग प्रतिराधक शक्ति तीव्र होती ह। मन अचल होता ह ता वात पित्त और कफकी अतिरिक्त विषमता नहीं होती। मन पवित्र हाता ह ता क्रोध आन्ति जनित रोग उत्पन्न नहीं होता। मनकी अस्थिरता, उल्लङ्घनता और अचलताम तीना प्रकारके राग होत ह। इसन्ति आरोग्यकी पुष्टभूमिम स्वास्थ्य सहज अवेणित ह। स्वास्थ्य याना स्वस्थिति आत्मस्थता। अध्यात्मसे आत्माका उच्य हाता है किन्तु साथ साथ उससे शारीर्य भी होता ह।

उपासनाके धीज

आराधनाकी सनातनिक विधि आराधना मान्यकी विधि के लिए साधनाका सोम एक है वही मन्त्र उपासकी उपस्थिति के लिए उपासनाका है । अन्तु इत तानोम प्राविक्त भेन मती है ।

आराधनाका केन्द्र वि तु आत्मा है । आत्मा अन्तुकी विविध परिणतियों का वाचक है । अन्तुकी मुख्य परिणतियाँ तीन हैं—वि चक्षुष्य अन्तु स्वप्न्य और परम अन्तु । तिम देन और अन्तु दो अन्तु तद्वद्वे ज्ञानमें प्रन शाना है, वन दन्तारण है । ओ अन्तुकी देन विन मानना है वद्वे अन्तुमा है । ओ विनद्वे वन मया है व अन्तुमा है । अन्तु देन, उपाय और उपवकी मोमांवा है ।

अन्तुमा उपाय है । उसके दो भाग हैं — बहिरन्तु उपाय और परमकी प्राप्ति करना । समाधि गन्तव्य बना है —

बहिरन्तु परदन्ति, त्रि शान्ता मन्त्रद्विषु ।

उपवाच्य परम मन्त्राणायाद् बहिरन्तुये ॥

आराधनाकी विधि के अनुसार आराधनाकालमें ओ साधना लीते है, व ही विधि कालमें स्वभाव बन अन्तु है ।

ज्ञान ज्ञान और मन्त्र — ये आत्म के स्वभाव है । ज्ञान और मन्त्र अन्तुका प्रकार है । इनके द्वारा ज्ञान प्रकृतिगत ज्ञान है । मन्त्र आत्माकी स्वस्वना है । इनके द्वारा बहु विज्ञानाय तदन्तु अन्तु स्वस्वकी रक्षा करता है । प्राकृतिक विचित्रताका विज्ञान है — गरीरका सारी विचित्रताका मूल विज्ञानाय तदन्तु है । जैन - अन्तु गन्तव्य है — आत्माकी

सारी विवृतिधाता मल पुद्गल आ आत्माका विज्ञान प तत्व है, का मयद ह ।

हाम्योपधीरे प्रसक्त डॉ० हैनिमेनका विविस्था सूत्र है — 'कारक कथोरस लाहर' समानस समानको विविस्था होती है । रोगकी सहा विविस्था यती ह जो उम रागको उद्वेग कर सके ।

अन दशनका आत्म विविस्थाका सूत्र है — समानस समानकी उन ली हो सकता है । गानकी आराधनास पानकी, दशनकी आराधनासे दशनकी ओर सवरकी आराधनासे सवरकी उपलम्बि हाती है । आत्मासे स्वभावकी उपगमनाके बिना उमकी उपलम्बि नहीं हो सकती ।

आधारागमें भगवान् महाधीरन कहा ह स्वयं, रस, गन्ध, रूप और ध्वनि — ये विज्ञातीय तत्व है । इन्हें आ जानता है और इनका परिष्कार करता है वही आत्मविद् ह ।

जैन सूत्र तीन प्रकारको आराधनाका उपभोग देते हैं — गानाराधना दशनाराधना और चारिशाराधना । व्याख्या ग्रन्थ बतलाते हैं कि भवहार दुष्टिन घम आदि तत्वाका अज्ञान सम्पन् दशन उतका गान सम्पन्नता और तपस्याका आचरण सम्पन् चारित्र ह ।

धमादिध्यान, सम्यक्त्व ज्ञानमधिगमस्तेषाम् ।

चरण च तपसि यथा भवनहाराद् मुक्तिदुरयम् ॥ (तत्त्वानु० ३०)

कि तु निश्चय दृष्टिसे आत्माका निश्चय ही सम्यग्-दशन, आत्माका वीर ही सम्यग् गान और आत्मामें स्थिति ही सम्पन् चारित्र ह ।

दशन निश्चय पुसि, बोधस्तद्बोध इष्यते ।

स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योग शिवाश्रयः ॥

भगवान् महाधीरन कहा — ध्यानीय गान, दशन और चारित्रको पाकर आत्मा पाप कम (विज्ञातीय तत्व) का नाश करता ह । इस नाशका अर्थ ह — उपास्य और उपासकके व्यवधानकी समाप्ति । उपास्य और उपासक अमित्र हो जायें वहा है उपासनाका धाज ।

यह आत्माको विराधनाका सूत्र ह । इसका तात्पर्य ह कि आत्माके हित
 और अहितके बीच स्वयमे है । दूसरे केवल निमित्त है । निमित्तका महत्व
 नहीं — ऐसा नहीं ह किन्तु उनका उनका महत्व नहीं ह जितना उपा
 यनोंका ह । धार्मिक जीवनमें जा बाह्याचार विकसित हुआ ह असंगति
 पतनी है व उपासनाक उपासनाको गौण और उसके निमित्तको प्रधान
 समझ लेना परिणाम है ।



श्रुतकी उपासना

जो एकको जान लेता है वह सबको जान लेता है और जो सबको जानता है वही एकको जानता है - यह आगम वाणी है ।

ब्रह्म क्या है, जिस जानने पर सब कुछ जान लिया जाता है ? आत्माको जानने पर सब कुछ जान लिया जाता है—यह उपनिषद् वाणी है ।

जाननेका अर्थ क्या है ? शब्दोंको पढ़ा और उनका अर्थ जान लिया, क्या जानना यही है ? क्या शब्दोंकी पकड़ और वहाँ अर्थकी समझ ? अर्थका वास्तविकता मत्ता है और शब्द ही उनके संरक्षण-माध्यम । माध्यमका मूल मानना भूल कैसे नहीं होगी ? हम क्या ऐसा उपासना करें जिसका अर्थ है उनके माध्यमके अर्थ तक पहुँच जायें । आत्माका चिन्तन शब्दोंमें ही रहें ब्रह्म क्या चिन्तन ? चिन्तन यह है जिसके द्वारा हम आत्मा तक पहुँच जायें । अर्थ तक पहुँचनेकी प्रक्रिया बहुत पुराना है । शब्दोंकी शक्ति पर अर्थ तक पहुँचनेका यत्न किया तब उपासनाका जन्म हुआ । जिसकी उपासना का जिसके पास बैठ उसके पास पहुँच गये । शब्दोंकी उपासना की तो शब्दास्तु बन गये । पानकी उपासना की तो पानी बन गये । चरित्रकी उपासना की तो आचारवान् बन गये । बीतरागकी उपासना का तो ब तराग बन गये । जिसकी उपासना का शून्य बन गये । आत्माकी उपासना का तो आत्मा बन गये और जड़की उपासना की तो जड़ बन गये । अछाईकी उपासना की तो अच्छ बन गये और बुराईकी उपासना की तो बुर बन गये ।

मनकी शक्ति अगाध है। वरु जिमके पास बठता है उसीके पास आत्माका ले जाता है। मनके बठनका ही हमारे आचार्योंन योग कहा है। चित्तका समाधि या चित्तका एकाग्रता या चित्तकी वृत्तियोंका निरोध जो है, वही योग है और वही है उपामना। शान्तिमें थोडा अंतर है। एक जुगनका अर्थ देता है और दूसरा समीप बठनका। मन आत्मास जुड़ जाये या उसक समीप बठ जाये—ममें क्या अंतर है। कुछ भा नहीं। अंतर ता इतना ही है कि समीप बठे बिना कोई जुड़ नहीं सकता। जुगता है वरु ता समीप रहता ही है।

आत्म चिन्तनका मतलब है कि वह आत्माक वारमें चिन्तन करते करते आत्मा तक पहुँच जाये। हमारा चिन्तन तबतक चल जबतक हम आत्मा तक न पहुँच जायें। व्यावहारिक पक्ष यह है कि हमारा चिन्तन तबतक चले जबतक हम अपने थापनी दुखी बनानवाली अपनी ही घेराओंको न पकड़ पायें। सहज ही प्रश्न होगा क्या चिन्तनस बुराई मिट जायगी? उत्तर मिला—मिट जायगी। इन दोनोंके बीचमें जो है वह सम्यता है। मनुष्य जो बुराई करता है वरु मूल बुराई नहीं है। वह बुराईकी अभिव्यक्ति मात्र है। बुराईका मूल है कि मन बुराईके सस्कारके समीप बठा है। बुराई नहीं करती। बुराईका सस्कार छवता है। बुराई नहीं मिटता बुराईका सस्कार मिटता है। बुराईका सस्कार सूक्ष्म है। सूक्ष्मको मिटानक लिए सूक्ष्म ही समय हा सकता है। चिन्तन मनकी क्रिया है। वह सूक्ष्म है। इसीलिए बुराईका मिटानमें जितना उमका महत्त्व है उतना बाहरा कमोका नहीं है। जन साहित्य कहता है—दो शकक ध्यानमें जो गुडि होती है वह कई उपवाससे नहीं हाती। बरु तन कम बाण्डोंकी उपेक्षा की है और जानका ही मोक्षका परम साधन माना है। उसका भी एक शक्तिकोण है। जहाँ मन जाता है वहाँ बाणी जाती है और गोर भी जाना है। जहाँ मन रहता है वहाँ बाणी रहती है। हाथ पर रुई आत है। मनको शीघ्र अनुभूतिसे साथ ही या चिन्तनके

साथ ही हमारे चरित्र और गरीब चरित्र हैं। आत्माको जो पाना वह वह उसका चिन्तन कर मनका तीव्रतम अनुभूति उसमें जोड़ दे। जो जिसके पास नहीं जाता वह उसे कैसे पा सकता है ?

जा अपनी दुष्कृतियोंको मिटाना चाहे वह उनमें विच्छेदका चिन्तन करे, मनकी तीव्रतम अनुभूति उसमें जोड़ दे। जा जिसके पास नहीं जाता वह उसको विच्छेद कर कर सकता है। जा अच्छाइयोंको प्राप्त करना चाहे वह उनमें विकासका चिन्तन करे, मनकी तीव्रतम अनुभूति उसमें जोड़ दे। जो जिसके पास नहीं जाता, वह उसका विकार बन कर सकता है ?

मनत चिन्तनको मगमा बुद्धकी भाषामें स्मृति उपस्थान कहा जा सकता है। जिस वाक्यमें ज्ञेय ज्ञेयोंमें मन लगा रहे उसकी अनुभूति भाती रह—यही है स्मृति-उपस्थान। कोई एक वाक्य होता है। पर मनोयोग उसमें नहीं होता उसे भवमान मगधीरन द्वय क्रिया कहा है। उसमें वास्तविकता सभी जाती है जब मन उससे जुड़ जाता है। कम होता रह और मन दूसरी जगत् चक्कर लगाने लगे, वहाँ कमकी सामर्थ्य क्षीण हो जाता है।

यदिन ध्याना में बुरास बंध और भलाईकी स्वीकार कर विन्तु कायकालम मन्त्र ही गसा नहीं होता। बुराई विरगिरिचित हाती है अच्छाईके नया परिषय किया जाता है। अणुमणी धनोको अगोकार करता है। अणुमणी धनोका अगोकार करना मात्रस अंत सध नहीं जाने। मनकी शाश्वतनुभूति मनत उपक माय जुड़ा रह सभी व भवत है। इसीलिए यथाके माय माय आत्मनामनाका विधि स्वीकार की जाती है। ध्याना पासनाका पन्ना मूत्र है—यदिन आत्म चिन्तन करेगा। व्यक्ति अपने आपका पढ़नम मूल नहीं करता। पर अपने आपको तभा पढ़ सकता है जब आत्म चिन्तनका प्रवृत्ति है। धनोको परिषय बनाने लिए यह विनाय अपहित है। आत्म विस्मृति हानपर अंत वस स्थि सकता है ?

आत्माकी सतत स्मृतिव लिंग श्रुतापासना आव यक ह् । आमी
 पामनाक सूत्राम स्वाध्यायका कार्द सूत्र नी ह् । परंतु जीने प्रतिदिन
 आत्म चिन्तन कर्भ्या येसे ही प्रतिदिन श्रुतवा अभ्यास करणा, यह
 और हो तो आत्म चिन्तनकी अफलस्वन मिल जाय । श्रुतकी धाराएँ
 बसहर ह् । यनी वही प्रयोजनीय ह् जा आत्म चिन्तनकी सगरा द
 परित्रका उन्नयन करे ।



अभयका मंत्र

कोई मनुष्य नहीं चाहता — मैं भयभीत बनूँ। जा नहीं चाहता मैं भयभीत बनें वह कसे चाहेगा — मैं दूसरोका भयभीत बनूँ। जो दूसरों को भयभीत करेगा, वह अपने आपमें अभय कैसे होगा ? वह दूसरोको इसलिए डराता है कि स्वयं डर रहा है। जो स्वयं अभय होता है, वह दूसरोको डरा नहीं पाता। जा दूसरोको नहीं डराता वही अभय होता है। घम गार्फके अनुसार श्री साका जादि विदु अभय है। मानव गार्फके अनुसार मनोविकासका श्री विदु अभय है। भयमान् महावीरक प्रकृत का मूल मंत्र है — डरो मत ! जो डरता है उसीके आस-पास डर अपना डेरा डाले रहता है। जो डरता है वह अपनेकी अनेक अनुभव करता है अमान्य मानता है। मूढ़ उसीके पीछे पड़ते हैं जो डरता है। डरा हुआ मनुष्य दूसरोंको भी डरा लेता है। डरा हुआ मनुष्य सप और संभवको भा तिलाजलि द देता है। डरा हुआ मनुष्य अपने दायित्वको नहीं निभाता उठाये हुए मानका बोध ही दाल देता है। डरा हुआ मनुष्य सत्यका अनुगमन करनेमें समर्थ नहीं होता। इसलिए डरा मत।

न भयानता परिस्थितिसे डरो न भयावने वातावरणसे डरा ! न बुद्धापत डरा ! किसीसे भी मत डरो ! जिसका अन्त कारण अभयसे आवित होता है वही व्यक्ति गतिकी सम्पत्तिकी पा सकता है।

भयसे स्थायु स्वस्थान शिथिल हो जाता है। डरनेवाला मनुष्य अपना गतिको विकसित नहीं कर सकता। मनुष्य जबतक अध पदाध और भोग्य लिए जीता है तबतक यह डरता है। परिवारसे डरता है, राज्य

तत्तां करता हूँ। पाप-रोग करता हूँ। गोग बुद्धि और मोक्ष के कारण है।
 अथ पशु और भोग के लिए आ गयीं। जोता किन्तु अथ लक्ष्यकी पुनर्वि-
 क्षिप्त कीता है, विनामक लिए जाता हूँ। अथ और तां करा भोगके भी गयीं
 करना। अथके लिए आता अथ भूय होता है। अथपुनर्वि यद्गुण्यः। बुद्धिमात्र
 मनुष्य का है जो अथके लिए बुद्धिकी गताय।

आर्षो ! आर्षो ! भगवान् गौतम आर्षि धर्मशास्त्री धर्मशास्त्र विद्या।
 भगवान् पूछा — आनुष्मान् उपायो ? जीव विद्यया ज्ञाने ?

गौतम आर्षि श्रमण निवृत्त आये व गताकी उपायकार विद्या विद्या
 भाष्ये आर्ष — भगवन् ! एतन्मनी ज्ञानेन इत्यत्र उपाय करा तात्पर्य है ?
 देवानुश्रितिका कष्ट न हाता भगवन् कहें। हम भगवान् पासके यत्र ज्ञानके
 को उपाय है।

भगवान् आर्षो ! जीव दुःखके कारण है।

गौतम भगवन् ! दुःखका कर्ता कौन है और उपाय कारण
 क्या है ?

भगवान् गौतम ! दुःखका कर्ता जीव और उपाय कारण
 प्रमाणा है।

गौतम भगवन् ! दुःखका अन्तर्कर्ता कौन है और उपाय कारण
 क्या है ?

भगवान् गौतम ! दुःखका अन्तर्कर्ता आत्मा और उपाय कारण
 अन्तर्माणा है।

तुम अन्तर्माणाके विद्याना हा। सागरकी धूल और माण्डर स्वर्ध
 तुम हो। तुम आ होना आता हा उपाय निवृत्त सुखीका करना है। तुम
 इन पवित्रपादा गुणगुणाते रहा—

मैंने गुना है अनुभव किया हूँ —

स्वतन्त्रताकी कृपा स्वर्ध मैं हूँ।

मैंने गुना है, अनुभव किया हूँ —

जलाका गुणध और बौटाकी गुमन स्वयं भ हैं ।

मन गुना है अनुभव किया है —

प्रलय और सृजन स्वयं भ हैं ।

मन गुना ह अनुभव किया है —

सागरकी ब्रह्म और सागर स्वयं भे हैं ।



ब्रह्मचर्य

प्रवृत्ति दो प्रकारकी हाता है—आकषणका और विकषणकी। आवग वा विकषण हीनम आंतरिक आकषण समाप्त हो जाता है। कभी कभी साधना-क्रमक अभावमें भा मनुष्य अपनी प्रबल चित्रक शक्तिके द्वारा आकषणपर निवृत्त कर लेता है पर उसका विकषण नहीं कर पाता। बाह्यके प्रति आकषणका विकषण करनेके लिए ध्यानक मिला दूसरा माग नहीं है। ध्यानसे मन केन्द्रित होता है और उससे स्वयं विकषणके प्रति अक्षिप्त हो जाता है। ऋषिभाषितम कता है—ध्यानक बिना धम शिर रन्ध्रित गरारके समान है। चित्तमें सहज वराग्य हो जाय यह बट्टन कठिन है। दाषकालीन अम्प्यामके बिना सामान्य व्यक्ति वराग्यको प्राप्त नहीं कर पाता।

ध्यानक विषयमें जन मूत्राम अनक स्थठापर विचरे तत्त्व मित्रत है। विगुडिमग और पातजलयागमूत्रकी तरह कोई एव आगमकालान अथ इन समय प्राप्त नहीं है फिर भी कइ मूत्रामें तथा उत्तरवर्ती अथाम ध्यानकी पद्धति मिलती है।

ध्यानका साधना-पद्धति य है—भाजका शिवक आसनकी साधना, प्रतिमलीनता या प्रत्याहार धारणा और फिर ध्यान। आचार्य कुदधुन लिखा है—जो व्यक्ति आहार आसन और निरा विजयको नहीं जानता वह जैन-शासनका नहीं जानता। साधनाका प्रारम्भ करनेवाला धन्य पहल तिन ही दूइ समयी हो जाय यह कैसे सम्भव है? समयकी दत्ता अम्प्यास करते करते प्राप्त हाती है। अम्प्यासक लिए अनुभवी गुरुका

माग दान आसयक ह । जा माग ही न जाने वह बाग कसे बढ सकता ह ? माग पूछनमें क्या कोई सवाच होता ह ? नहीं होता । तो फिर साधनका माग दान केनमें क्या सवाच हाना चाहिए ? उस यह मानकर कमानों चलना चाहिए कि दूसराको मरी दुबलताका पता न चले । इन मायतामे आत्मो अपनी दुबलताको छिपानका प्रयत्न करता ह और जहाँ छिपानका प्रयत्न होता ह वहाँ साधना बचनमें बदल जाता ह ।

साधकका इस मायताक आधारपर चलना चाहिए कि विषयाक प्रति लगाव किसमें नहीं ह ? सबमें ह । दुबलता किसमें नहीं ह ? सबमें ह । जा व्यक्ति साधनाक आरम्भस हा अपनको बहुत प्रबल दिखानका यत्न करता ह वह बहुत दुबल ह । उसकी दृष्टि साधनाके प्रति स्पष्ट नहीं ह ।

साधकक सामन धारारिक या मानसिक जो भी अवरोध आवे उस यह अपन पथ अशकक सामन रत दे । इ अवरोधको दूर करनका जो माग बतावें उसपर चले । साधनाक क्षमम जान रना बहुत बड़ी बात नहीं ह बहुत बड़ी बात ह करना ।

जा अशक्त भाजनक प्रति बहुत जागरुक नहीं है आसनक अम्पासम वदनिष्ठ नहीं ह प्रत्याहार धारणा और ध्यानका अम्पासो नहीं ह उसके लिए ब्रह्मचर्यको साधना कहनालाककी बात ह ।



रक्तव मचालनम वासवा वटा हाथ ह इगलिण इग वातपर ध्यान
 वेत्त करि सि श्याम कम लिया जाय ? श्वास लनका मुख्य अंग नाक ह ।
 वह उसास ला मु म मन ली । मुहम श्वास लनपर पफण कमजोर बनता
 ह क्याकि भातर जानवाला ठण्डा हवा साथी फेफणपर असर करता ह ।
 नाकमे जानवाला हवा गरम ताता ह । उगमें जा कचरा हाता ह उग
 नाकक बग रात लन ह । कवल शुद्ध हवा प्रवण करतो ह । जिना
 विनाप परिस्थितम श्वास महम भी लिया जा सकता है । माग ला गरमी
 मग गया ह । उमे गा त करना ह । उसका उपाय ह शातला मुद्रा । शीतला
 मुद्रा करत समय श्वास मुहम लिया जा सकता ह ।

पर समय श्वास लम्बी लनका अभ्यास करा । एकागरी जापमें श्वास
 धार धीर लम्बा हाता जाता ह । अरु समय भी दाघ श्वास लिया जा
 सकता ह । दीघ श्वाससे स्वास्थ्यमें प्रतपण लाभ होता ह ।

स्वस्थ कौन ? म स्वस्थ हूँ या नहीं इसका विणय करना बहुत
 सरल नहीं ह । कुछ गग दुबलेका अस्वस्थ और माटवा स्वस्थ मान
 बढते ह । डॉ० एम्बूनन कहा ह—स्वस्थ वह ह जिसका चित्त प्रसन्न
 बग शान्त व प्रवृत्तियाँ उत्तमगर्हित हा ।

स्वस्थ रणम मानसिक प्रसन्नताका बहुत बडा हाथ ह । हीन भावना
 और अह भावना मनक सन्तुलनको विगाड देती ह । किसीक कुछ कहनपर,
 उपालम्भ दनपर मनक प्रतिकूल स्थिति होनेपर, मन विकल्पोंसे भर
 जाता है । मन मुग क्या कहा ? इसका पीछ क्या भावना ह ?—आदि
 आदि प्रश्नोंम मन उलण जाता ह । य अधिक विकल्प उसीक मानसमें
 उठत है जिसका मन कमजोर हाता है । िनका मन शक्तिगाली होता ह,
 वह सब कुछ समझता हुआ भा बाह्य स्थितिसे अधिक प्रभावित नहीं
 होता । मानसिक सघटनाआका स्वास्थ्यपर बहुत असर पडता है । शरीरमें
 मयंकर रोगके बीटाणु हाते ह पर जायनी शक्ति प्रबल होनेस उनका

आर नहीं बल्कि। मन कमजोर हो जाय तब व काटाणु भी वाकल्प कर देत है।

डॉ० निमनन का—रागका मूल आसाम है। इतम गुणवा ना है। कुछ आन्तुक रागका बाव छा है ता निरूप्य प्राप्त प्राणा वि मनुष्यक शरीरमें दस प्रतिगत राग शारीरिक हात है और नव्य प्रतिगत मानसिक। मानसिक आवगति अनक बामारियाँ उत्पन्न पाता है। घुगाम मन विग्रास भर जाता है। एक व्यक्तिना सामान्य स्थितिम फटा लिय गय सम समय दृ स्वस्थ था रपत आि मे काइ दाप नहीं मिला। जेी व्यक्तिक घुणाक समय फाटा लिय गय ता रक्तम दूग्णितता मिली। आंगा से मन विपन्न पाता है और मना आनि भवनाओंसे वह प्रसन्न होता है। प्रसन्नताका स्थान ह्योसे बहुत ठवा है। ह्य गिन्धिपतित्रति मानसिक ब्रह्मवा है। यह अनुकूल सयागामे उत्पन्न होता है और प्रतिकूल सयागामे विनष्ट हो जाता है। प्रसन्नता अन्त करणका सृज स्वच्छता है। वह बाहरी सयाग विरोगम अप्रभावित मनकी स्थिति है। ध्यान कापात्सग अनित्य आनि भावनाआक शरा चित्तम प्रसन्नता बढ़ता है। जिसका चित्त जितना प्रसन्न होता है वह उतना ही स्वस्थ होता है। जितना विपन्न होता है उतना ही अस्वस्थ। प्रसन्नताक लिए ध्यान और कायोत्पग अधोष साधन हैं।

मानसिक प्रदुलतामे शरीरका सरक्षण हाता है। आजकल डॉक्टर लोग स्वत सूचनाका अधिक उपयोग करते हैं। मनमें सकल्प करे कि मे स्वस्थ हूँ। मरी बीमारी मि गया है। विश्वासक साथ सकल्प करनसे निश्चित सफलता मिता है। धारणा स्वत सूचना और आसनाका प्रयोग करके देना जाये फिर यह प्रश्न नहीं होगा कि इनका स्वास्थ्यसे क्या और कितना सम्बन्ध है ?



स्वास्थ्य और आहार विवेक

स्वास्थ्यक अनन्य साधन हूँ उनमें भाजन भी एक है। भाजन-सम्बन्धी जानकारी आवश्यक होती है। भाजन बढ़ करना चाहिए? — इसका साधा सा उत्तर यही है, जब भूख लग जाये? कितना और क्या खाना चाहिए? य० भी जानना आवश्यक है।

आगममें एक शब्द आता है मियामण — मिताहार। साधुका मित आहार करना चाहिए। आयुर्वेदमें भी आहारक सात प्रकार बताये गये हैं। हीनाहार, मिताहार और अतिआहार। मिताहार स्वास्थ्यक अनुकूल होता है। हीनाहार और अतिआहार स्वास्थ्यक प्रतिकूल होते हैं। यद्यपि कइया का विश्वास है कि हीनाहारसे पाचन क्रिया ठीक होती है पर आयुर्वेदको दृष्टिमें वह सही नहीं है। जसा कि कहा गया है—

तत्र हीनमात्रमाहारसि बलवर्णपचयनमकरमुदायतकर
मगामुद्वन्वृष्यमनीजस्य क्षीरमनाबुद्धीद्रियोपघातकर सारविमनमल
दम्भावहमशातेरुच वातविकारणामापतनमाचरत ।

हानि आहारसे बल, शीतल्य और पुष्टता नष्ट होता है। आयुष्य और आजकी हानि होती है। शरीर, मन, बुद्धि और हृदयका विनाश होता है तथा अस्मा प्रकारके वायुके रोग उठ खड़े होते हैं।

आहारमग्नि पचति, शोषानाहारवन्नित ।

धातुर्क्षानपु क्षापेषु जावित धातुसक्षय ॥१॥

अग्नि आहारको पचाती है। आहारक अभावमें वह दायाको पचाती है। दाया क्षीण होनेपर वह धातुको और धातुआके क्षीण होनेपर वह जीवन

की शील जाती है। इसलिए आयुर्वेद का मत है कि अग्नि का उचित मानामें आहार मिलना चाहिए। अतिआहार सब दोषोंको कुण्ठित कर देता है—
अतिमात्र पुनः सर्वदोषप्रकोपण।

प्रश्न उठता है, परिमित आहार किसे माना जाय? सबको भूख समान नहीं होती इसलिए सबके लिए एक ही सीमा नहीं हो सकता। इसका सतिष्ठ उत्तर यही होगा कि जिसको जितनी भूख लगे उससे एक रा कबल कम खाना ही परिमित आहार है। भारतीय स्वास्थ्य विमाने सामान्यतः भोजनकी तात्पर्य इस प्रकार प्रस्तुत की है—घनान्न १४ औंस, दूध ३ औंस, साग-तरकारी ६ औंस, दूध १० औंस चीनी या गुड़ १ औंस, तेल घी आदि २ औंस।

शारीरिक श्रम करनेवाले इस अनुपातमें अधिक भी ले सकते हैं। क्योंकि, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भोजन करनेके दो कारण हैं—गन्धकी पूर्ति और शक्तिकी प्राप्ति। यथाज्ञानसे यथाज्ञान ताज्जुत आती है यह विश्वास मिथ्या है। होता यह है कि अधिक खानेके पचानेके लिए शक्ति अल्प मात्रा में अधिक खर्च हात है। हिताहारसे स्वास्थ्य बनता है और अहिताहारसे वह बिगड़ता है।

हिताहारोपयोग एक पत्र पुरुषवृद्धिकरो भवति।

अहिताहारोपयोगः पुनर्व्याधिनिमित्तमिति ॥१॥

जो आहार हम शरीर धातुओंकी प्रकृतिमें स्थापित करता है और वेपय शरीर धातुओंको हम करता है वह ही आहार होता है जो इससे वेपरीत होता है वह अहित।

यथाहारजात समारचक शरीरधातून् प्रकृती स्थापयति विषमाश्च शरीरकरोतीत्यतद्विहित विधि विपरीत स्वहितमिति।

भोजन कैसा? आयुर्वेदमें इसका उत्तर यह है कि मनुष्यका भोजन स्निग्ध, उष्ण और रसपरिपूर्ण हो। कोर रुखे आहारसे कृत्तियोंमें भी स्थापन आ जाता है और साममें चिहनाई—स्निग्धतासे अनुशील अग्नि

प्रदीप्त होता = खाया हुआ भोजन पाच्य पचता है वायुका अनुलोमन होता है इन्हीं पष्ट हाता है बल बढ़ता है वृद्ध और प्रसन्नताकी अभिवृद्धि होती है । इसलिये भोजन स्निग्ध होना चाहिए ।

स्निग्धमानीयान् स्निग्ध हि भुज्यमान स्वस्ते, भुक्तं चानुष्णं मग्निमुत्तरयति निप्र जरां गच्छति, वातमनुलोमयति, दुर्दीकरोती द्विषाणि बलाभिवृद्धिमपजनयति वृणप्रसां चाभिनियतयति । तस्मात् स्निग्धमश्नीयात् ।

उष्णमानीयात् उष्णं हि भुज्यमान स्वस्तं भुक्तं चाग्निमोक्षं मुत्तरयति निप्र जरां गच्छति वातमनुलोमयति । तस्मात् उष्णं च परिह्रासयति । तस्मादुष्णमश्नीयात् ।

आहार कैसे करें ? स्वास्थ्यविक्रमो भोजन कराको कुछ विधियाँ निश्चित की हैं । वे बहुत उपयोगी हैं । उनमें पहली विधि यह है—
 १. तमना भुज्जोत — जाहार करते समय मन आहारमें ही रूपा चाहिए ।
 २. नातिरुतमनायात् — बहुत जल्दी जल्दी नहीं खाना चाहिए ।
 ३. नातिविलम्बितमश्नीयात् — बहुत धीरे धीरे नों खाना चाहिए ।
 ४. अशल्पनं अस्तन् तमना भुज्जोत — भाजन करते समय न बातचीत करनी चाहिए और न हसना चाहिए । मन बल भाजनमें रहना चाहिए ।
 ५. दुर्ध्यामचक्राधपरिश्चितं, लुघेन रम्यं यन्निपीडितं

प्रद्वेषयुक्तं च सच्यमानमनं न सम्यक् परिपाकयति । १।

माश्रयाप्यभ्यवहृतं पथ्यं धान्नं न जीयति ।

चित्तान्शोकमयक्रोधं दुःखशय्याप्रणयै ॥२॥ भोजन करते समय मन शांत रहना चाहिए । क्योंकि ईर्ष्या मय क्रोध, लोभ रोग दानता प्रद्वेष चित्त शोक दुःखशय्या और रात्रि प्रायण—इन सब रथाप्रोति प्रभावित व्यक्ति जा खाता है उसका ठीक-ठीक परिपाक नहीं हाता । वह यदि पथ्य आहार करता है और सुखेन माश्रामे करता है फिर भी उसका माश्र हवा ठीक रूपमें नहीं पचता ।

पाना भाजनक साथ पानाका भा सम्बन्ध है । उमय भोजन पचना है और शरीरक रूचिग तत्त्व बाहर निकलन है किन्तु उमका उपाय भा विवरमात्रण ह । एक साथ बहुत पान पीना भोजनका परिष्कार नहीं जाता और पाना बिलकुल न पीनेसे भा उमका परिष्कार नही जाता इस लिए योग्य-पानाकर अनक बार पानी पाना चािे ।

अथ-पुनःपान विषयत-स्त निरम्युप-वाञ्छ स पाठ्यति ।
 एरमाद्यत यद्विनिवधनाय सुहुमहुवारि विषदग्निः॥
 पानी न अरिः एरम और न अर्धिक टाका दकि गरम तापमानक मन्त्र पाना चािण ।

उमय विषक स्वास्थ्यकी सुरक्षा के लिए जिनका न एव भाजनका है उमके कम उपायका नहीं है । योग्य ज्ञान शीघ्र मर्षित पात है उनका प्रयत्न काय समयपर टाक उपाय न जाना ही है ।

उमय यदि ठीक समयपर हो तो शरीर अत्यन्त बहुत कम बचता है । जामन व्यायाम आदि का मन्त्र इसीलिए है कि यह आतना बन देना है । जिनके व समयपर अपना काय करी न । अने प्रादि कारण और विमजनका व य उचित उपाय करता रहे तो अस्वास्थ्यका सम्भावना बहुत कम हो जाता है । जिनके आतनाको विमजन गतिग टाक है ओ उचित मायाय उल्ला एवन करता है और ओ त्तिुपरिधिग भाजन करता ह उक्त स्वास्थ्यका सुरक्षा उपाय इन प्रवृत्तियाय ही विहित है ।



चित्तशुद्धिके साधन

चित्तस्य शुद्धये कम, न तु घस्तूपलब्धय—॥ (विवेक चूडामणि)

कम चित्तभी शुद्धिके लिए करना चाहिए, वस्तुकी उपलब्धिके लिए नहीं— यह शंकराचार्यका अभिमत है। उन्होंने चित्त-शुद्धिके परम्परागत चार साधन माने हैं—

साधनान्यत्र चाचारि, कथितानि मनीषिभि ।
 यथु मास्त्रव ससिष्टा, यदभाये न सिद्ध्यति ॥१८॥
 आदौ नित्यानित्यवस्तुविवेक परिगण्यते ।
 इदामुत्र फलमोक्तविरागस्तदनंतरम् ॥१९॥
 गमादिपटकमप्यनिसुमुशुत्त्रमिति स्फुटम् ॥२०॥

१ विवेक २ भोग विराग ३ समाप्ति पटक सम्पत्ति ४ ममज्ञात्व ।
 जैन साधनामें इनके नाम भिन्न हैं पर भावका दृष्टिमें दोनोंमें समानता है—

- १ विवेक = सम्यक्त्व
- २ भोग विराग = निर्द्वेष
- ३ समाप्ति पटक सम्पत्ति —

(१) गम (२) दम (३) उपरति (४) नितिक्षा (५) श्रद्धा, (६) समापान = (१) दम (२) गम (३) उपरति (४) नितिक्षा, (५) श्रद्धा (६) समाधि ।

४ ममज्ञात्व = सवेग

अध्याय ११ करन विवेककी परिभाषा इन शब्दों का है—ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या है। इस प्रकार जो विनिश्चय है उस निरानित्य वस्तुका विवेक कहा जाता है—

ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्येत्येवैव रूपं विनिश्चय ॥२०॥

सोऽयं निरानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृत ॥२१॥

जैन श्रमक अनुसार जिनका अस्तित्व है वे सब सत्य हैं। चेतन भी सत्य है और अचेतन भी सत्य है। अस्तित्वकी दृष्टिसे दोनों सत्य हैं। चेतन और अचेतनमें एकताकी वृद्धि होती है वह असत्य है। चेतनकी अवतनमें भिन्न मानना सम्भव है। भोग वस्तुके प्रति जो धृणा होती है, उस बराह्य कहा जाता है—

तद् बराह्यं शुश्रूषाया दशानश्रमणादिभिः—॥२१॥

देहादिब्रह्मस्यैतद् दानस्य भोगवस्तुनि—॥२२॥

वस्तुके प्रति हमारी दोष दृष्टि स्थिर हो ता मनमें धृणा होता है अथवा नहीं।

कोई धार्मिक सामन आती है। वह रग रूपमें अच्छी है। गरीबके लिए वह हितकर नहीं है फिर भी उसे दक्ष व्यक्तिका मन लक्ष्म्या जाता है। क्योंकि आँसुके सामन उसका रग रूप आता है, पर परिणाम नहीं आता। इन्द्रियोंके सत्कार चलनवाला परिणामको नहीं जानता वस्तुके रूपका जानता है। जो व्यक्ति यह जान ले इसका परिणाम अच्छा नहा है वही उससे उपभोगसंयम करता है। भगवान् महावीरमें कहा है—
आयकदमो न करेइ पाव— जो आतंकपूर्ण होता है वह पाप नहीं करता। पाप नहीं करता है जिस पाप करनेमें आतंकपूर्ण नहीं होता—
अपना अनिष्ट नहीं देखता। जो व्यक्ति यह जानता है कि मनमें एक बार बुरी भावना आनेका अर्थ है दिमागमें अज्ञानका पालना। वह बुरी

भावनाकी प्रमाणमें घुसनेसे रोकना। किन्तु जो कमी नहीं जानता वह दूसराकी सुरा करनमें बहुत रस लेता है। एक बार भादिभागमें सुरा भावना आनी है वह अपना सस्कार छोड़ जाती है और वह सस्कार न जान कर उद्वेग हाकर व्यक्तिका भटका देता है। बहुत बार हम कल्पना करते हैं कि अमुक व्यक्ति इतना अच्छा है उसमें वह अनुचित काम कैसे किया ? पर हम उस सत्यकी भुला देते हैं कि व्यक्ति उतमानसे ही प्रेरित नहा जाना अनीतके सस्कारसे भी प्रेरित होना है। इसी समय उदमम भगवान् मन्वाबोरन कहा था—हित्ता इसलिए त्याग है कि उससे अपना पतन जाना है।

भयाली अहतपिन अपना अनुभूतिक स्वरम लिता है—म किसीका तिरस्कार नना कहना क्योंकि वह मुहासे तिरस्कृत होकर मर जहितके लिए सना जागस्क धन आयगा—

या ह सत्रु भा अघरणो विभोयणट्टनाए पर अभिमविस्सामि ।

मा ण भा ण म पर अभिभूयमागं मम चंच अट्टिताणं मविस्सति ॥२॥

जमन तागनिक वीष्टन कडा—किया हुआ काम अवश्य भागना पड़ता है। यह सिद्धांत नतिकताका आधार प्रस्तुत करता है। भारतके अनेक दार्शनिक हम तथका हजारों वर्षोंसे गौरान आये हैं। हम बहुत लम्बे भविष्यमें न भी जायें। हमकी मचाई उससे पूर्व भा हमारे सामने आ जाता है। क्या मूठ खोजनवाला उसके परिणामसे बच सकता है ? क्या नहीं। जूरे बीउनमें पहा मम चिंता हाती है। बालक समय मनमें भय हाता है हूनयम घडकर बड जाता है और अंशम पचातापम मन भर जाता है। इस प्रकार ताना ही बालाम जूरे मानसिक धी बयोमें पिबिलना आनी है।

अध्यात्मिक प्रति जा खपेना हाता है वह अपने हितके लिए हाता है। दूसरेके हानि माननमें वह हीन शो हाता किन्तु हीन माननवाल्म हानता उपाय न जाता है। दूसरेके प्रति असुर पवकार करनवाला उसके प्रति

जानि पहुँचा सके या नहीं यह निर्दिष्ट नहीं है। किन्तु अमर व्यवहार
 करनेवाला अपन लिए मना खीन लेता है यह सुनिश्चित है। इन प्रकार
 बुरी प्रवृत्तियोंमें जा अपना आत्मिक दण्डना है तो उनका प्रति विरक्त हो
 सकता है। विषयमें दाद-गनका अम्याम आध्यात्मिकताका गहरा
 आधार और वराम्यकी म त्वपूर्ण पृष्ठ भूमि है। चित्त शुद्धिके चार कारणों
 में विवक और मुमगुत्व मूलभूत कारण हैं। इनके हानपर समाधिपटक
 समाप्ति और भोग विराग सहज ही निष्पन्न हो जात हैं। जब परिभाषामें
 कहें तो, सम्यक्त्व और सवग मूलभूत कारण हैं। राम आदि तथा निर्वे
 उनके फलित हैं।



वग घात विम घातुसे बना है। विजुषा अथ है दोहना, बग्न करना। वग दो प्रकारका होता है—पारीरिक् और मानसिक। मूत्र, प्यास, रोना, हपना मल मूत्र, शीघ आदि पारीरिक् वेग ह। क्रोध अभिमान कपट लोभ कामवामना आदि मानसिक वग है। पारीरिक् वगको रोकनेम नान होती ह और मानसिक वगका न रोकनेमे हानि हाती ह। आपूर्वेषी दृष्टिमे भी पारीरिक् वग रोकना लाभत्र नही है। दशवकालिन सूत्रम कहा ह—वचमुत्त न घारए ?

मत् मूत्रक वगको मत राकी उसे राकनेसे अनक राग उत्पान हा जात ह।

मुत्तनिरोह चक्षुः, वचनिरोह च पात्रिय चयति ।

उद्ग्निराह कोड मुक्कनिराह मघद अपुम ॥

मूत्रका वग राकनस चक्षुकी ज्योति गष्ट होती है। मलका वग रोकनस जीवना गतिकका नाग हाता ह। ऊर्ध्ववायु रोकनस कुछ रोग उत्पान हाता ह और वायका वग राकनस पुष्पत्वकी हानि हाता ह।

वगका अथ ह—स्फूर्ति या तीव्र गति। सं उपसग लगनेस उत्पका अथ होता ह—मोहाक प्रति ताश्र अभिलाषा। मुमुक्षु साधु ही नही गृहस्प भी हो सकन है यि मुमहाके भाव प्रबल हा। गांधीजी एक दिन रात्रद बाबुके घरपर गय। द्वारपालन उनकी वेपभूषा दसकर जान नी लिया। दुतकार कर वापस कर लिया। राजेद्र बाबुने इस अवमानका स्थितिका दस लिया। वदौबर तोसे आय गांधीजीस माफी मांगन ग्य। उत्तरम गांधीजीन कहा—मान अवमान आत्माका बंधन ह म

का इगल मुक्त होता चाहता है ।

य विचार की उल्ट है जहाँ समताका भाव आता है । मनक अनुकूल काममें गवकी धनभूति हाता है और प्रतिकूल स्थितिमें दान भावता प्रताता है । यह वृत्ति मनुष्यका चार चार रखा बनता है । निम्न और प्रशंगके सम रहना अति कठिन ह । निम्नु समताका उनम सम राना चाहिए ।

लामालाम, सुत दुक्क, जाविण मरण तता ।

ममा निदापमसामु तदा माणावमायथा ॥

लाम और अलाम सुख और दुःख जीवन और मरण प्रगता और निरा मान तथा अपमान—य पाँच मंगल ह । हर व्यक्तिम मानवाय स्वयंता हाता ह । इनीलिए वह पाँच युगलाममें लाम सुख जीवन प्रगता और मानकी चाहता ह । अलाम दुःख मरण निरा और अपमान का नहीं चाहता । वास्तवमें जिन पाँचोंका व्यक्ति था ना ह य ना बंधन है और उनम अधिक गहर ह जिनका बंधनगी था ता । क्योंकि त्य और निराका बात समझमें आ जाता है पर राग और प्रगताका बात समझमें नहीं आती । जब यह समझमें आ जायगा कि य भा बंधन ह तथा साधना सकल हापी । साधु बनन-मात्रक जीवन ऊपर तठ जायगा यह मानता भूल ह । जीवन उन्नत तथा हागा जब इनका साधना फलवता हागा । गृहस्थ की मानाधिक मुहूत मर तक हाती ह साधु उस जीवन भरक लिए स्वीकार करता ह ।

सामायिकका अर्थ है—विषमताका सवधा परिहार । लाम और अलाम दाना जीवनकी विषमताएँ ह । लाम पगल है ता अलाम गहटा । दोनोंका समतल है सामायिक या समता । पाँचा युगल जीवनका विषमताएँ हैं । उनका त्याग ही सामायिक ह । साधकम सबम पल मुमुक्षा वृत्ति हाता चाहिए । उसके मुक्त होनेपर सब सुप्त हो जाते हैं । मुमुक्षा वृत्तिका परिणाम ह—धमक प्रति धडा या इडा उत्पन्न होना । बिना

प्रयाग इच्छा प्राप्ति नही होती। बंधनसे मुक्त होना ही दृष्टाके लिए पन्ना साधन धर्म है। इसलिए धर्म प्रति श्रद्धा हाती है फिर उसका आवरण। एक व्यक्ति का धर्म जल उठता है दूसरा धमा करता है। धमा करनेवाला प्राणिक अनुभूति करता है। तब वह निश्चय करता है कि धमाका माग सु...।

मयाग अनुत्तर धर्म प्रति श्रद्धा हाता है और उसमें अधिक तबग बढ़ता है। धर्म प्रति श्रद्धा है या नही इसका सही उत्तर आत्म विरोधमस मिला है। जिसके मनमें श्रद्धा हाती है वह कुछ व्यवहार नहीं करता। जही उसमें प्रति श्रद्धाका अभाव हाता है वही सब कुछ हाता है जो नही हाता चाि ए।

धर्मका वैज्ञानिकता

धर्म वैज्ञानिक तत्व है। वैज्ञानिक तत्व वह हाता है जो देश-कालसे अबाधित हा जिसका निष्पन्न सब देश कालमें समान हा। अमरिकामें प्रयाग करनेसे सफलता मिळता है ता भारतमें भी उसका प्रयाग सफल हागा। एक वय पहल प्रयागमें सफलता मिली ता आज भा उसमें सफलता मिळगा। सबंध और सबंध जो प्रयागमें एकलपमें रहता है वह वैज्ञानिक तत्व हाता है। धर्म इसका कसौटाम परम वैज्ञानिक तत्व है। धर्म आराधना करनेमें मातृम या अमरिकामें कतीपर भी करा सबको आनंद मिळगा। आज कठ और परसा कभी उसकी आराधना करो उसमें परिणाममें काई अंतर नही आपगा। धर्मका आराधना करनेवाले सब मुक्त हो गय वतमानमें हा रहे हू और भविष्यमें होंगे। इसलिए धर्म प्रायगिक है नकालिक है और देश-कालसे अबाधित है। इसीलिए धर्म परम वैज्ञानिक तत्व है।

पारश्वर्य देशमें नय वैज्ञानिक धर्म मान लगे है कि अन्धकारमें कितना ज्ञानि नही मिलनी। जन प्रागमामें यह उल्लस है कि गण भाधु साधुत्व

म गमन करना हुआ प्रथम मुझमें आया जाता है । एक वर्ष का साधनामें
 वह भौतिक जगतमें लच्छुष्ट पौन्यनिक (सर्वापसिद्ध) सुखका लक्ष्य जाता
 है । गाँव गंग और पट्टन वर्षों तक साधत्व पाठनपर भी यदि ध्यान
 नहीं आता तब प्रयत्न उठना है कि यह सिद्धांत सत्य नहीं है या वह प्रमाण
 पकड़ना नही आया । प्रमाण ध्यान पकड़की है । वह सही है या नहीं ?
 इसका निषेध पक्कक बात ही हो सकती है । उस पकड़नमें ध्यान केंद्रित
 करना जरूरी है । दयताआका स्तर जन जस ऊपर उठना है वस-वस
 उनका परिश्रम समत्व और शरायका अवगाहना कम ली जाती है
 गान्ति बढ़नी जाता है । निर्वर्तिक साथ मुख भा जाता जाता है । हमें
 यथाय दृष्टि दक्षता चाहिए । उसर बिना हम सत्य तक नहीं पहुँच
 सकते । यथाय-दृष्टि देखनपर यह स्पष्ट होता है कि भौतिक मुख भा
 शमिक मुख है पर उसे दुख इसलिए माना कि उसका परिणाम मुख
 नहीं है । एक मुख ऐसा भी है जिसका परिणाम सुखद है । उसकी
 प्राप्तिके लिए ही क्षणिक सुखका त्याग किया जाता है । मुख केवल
 पारीरिक ही नहीं मानसिक भी होता है । सबसे बड़ा मुख मनकी शक्ति
 है । मनुष्य का विनाशसे बचनेपर गान्तिका कारणमें जाता है । सबसे बड़ा
 दुख अपना त्त है । उसका मूक आवग है । उसपर विजय पाना ही सबका
 भाग है ।



ममूशाकी वृत्ति जगनक बा० निर्वेद जाता ह । निर्वेदका अर्थ है—
वराग्य । व० तीन प्रकारका ह—ससार वराग्य धरोर वराग्य और भाग
वराग्य । परब्रह्मने वराग्यको परिभाषा का ह—

दृष्टानुभ्रविकीधयचितृष्णस्य यर्गीकारमना वराग्यम् ॥

सम्पर पुरश्चर्यातगुणवैतृष्ण्यम् ॥ पातपल्ल योग दशान ॥११, १११

गुण (विषय) का प्रकारक ह—ए और आनुभविक । भाजन
वश्य भवान आनि जा प्रत्यक्ष है वे सब दृष्ट हैं । जो इन्द्रिय विषय पढकर
या सुनकर जान जात ह य आनुभविक है जैसे स्वय-मुक्त आनि । दोना
हा प्रकारक विषयोक्त प्रति तृष्णाके भाव समाप्त हानपर वराग्य होता ह ।
व० धार्मिकक लिए ही नही सबक लिए आवश्यक ह । सत्य जिज्ञासु व
मुमुक्षुं लिए वह अत्यन्त आवश्यक ह अथवा आत्मदान नही हाता ।
आवाय कुंकुदन कहा—

ताम ण णज्जइ अप्पा, विसण्णु णरा पवट्ठ नाम ।

विसण विरसच्चिणा, जाइ जागेइ अप्पाण ॥

मनुष्य जबतक विषयोको जानता ह, तबतक आत्माका नहीं जान
पाता । विषयस विरक्त होनपर ही वह आत्माको जान सकता है ।
विषयास दूर हानक लिए एक ऐसा लक्ष्य सामन रखना आवश्यक ह
जिसका पूर्तिम विषया—सुखास अधिक आनन्द मिले । अनित्य आदि
वारह भावना और मन्त्रा आदि चार भावनाआका अम्पान भी विषय
विरक्तिका एक महत्वपूर्ण उपाय है । चित्तम जो प्रवाह चल रहा ह उसका
दूसरो चार मोडनक लिए भावनाआका चार चार अम्पान करना आवश्यक

है। समुद्र की तरह आत्माका भाग अवस्थाएँ हुना ह—प्रगात और तरंगित।

रागद्वेषादिकृत्स्नाछैरलोल यमनापलम् ।

य पश्यस्यात्मनस्तत्र तत्रैव नतरा जन ॥

राग और द्वेष जिनका मन तरंगित नहीं है वह आत्म-तत्त्वको पाता है। आत्माके प्रति दृढ़ आस्था पना हूण बिना आनन्द नहीं मिलता। उसका उपनिषदके लिए मवस्व त्यागका भावना होनपर सब उपनिषद हा जाती है। मय प्राप्य है पर अध्यात्म अप्राप्य है। माधु जावनक प्रति आश्चर्य इतिह्ये ह कि अयन जा अप्राप्य ह वह इतमें प्राप्य ह। आत्माकी तरंगित न्या विकल्पन हाता है। यह शारारिक और मानसिक आवगमि उत्पन्न हाता ह। भूल लगता ह ध्यान टूट जाना ह। प्याग लगता है एकाग्रता भग हा जाती ह। क्रोध आता है चित्त षधल हा उठता है। हम अधस्थाम जा प्राप्य ह वह दुनियाक किमो भा व्यक्तिकी प्राप्य ह। विषयका बराम्य और आवगापर विजय पाना हर विसाका प्राप्य नहीं ह।

प्रान हा सक्तता ह—इह ह ता इन्द्रिय विषयाको आव यकता रहगा। प्रवृत्ति भा रहगी। वह रहगी उसकीन अस्वाकार करता ह। पर उसक माय जा मानसिक लगाव ह वह रहगा यह जहरा नहीं ह। उस छाटा जा सक्तता ह। इसलिए भगवान् महावारन कता—निर्वेका फल ह सब भागाके प्रति विरक्ति। निर्वेका दूसरा फल ह आरम्भका परित्याग। जहाँ भाग ह वहाँ आरम्भ ह। अस ही भागकी विरक्ति हाता ह वस हा आरम्भक प्रति उदासीनता आ जाता है। उसस ससार माग विच्छिन्न हा जाता है।

हर प्रवृत्तिक साथ बचन नगा हुआ ह, जस अग्निक साथ घुमा। सवारम्भा हि दीपण घुमेनाग्निरिवावृता। प्रत्यक कायम यकान होती है निवृत्तिसे वह दूर हाती ह। जहाँ प्रवृत्ति है वहाँ अवश्य बचन ह

निवेद

उमर हूँगी क्या भा रट जाता है। कपड़ा ताड़ा वगैरे ही ममनु बना जाता है। ममनाग धमक प्रति थड़ा हाता है उमर विरल हाता है। विरलक प्रति आकषण तमो मम मय नष्ट हो जाता है।

प्रवृत्तिर वस्तु

आत्माय दानका पश्येण सामाजिक जायनया परिधायना पार पुण्याधीन निर्मातृ है। वह—काम अथ माग और धम। इनम काम और मोक्ष का माध्यम और दान का माध्यम है। काम पार प्रपान प्रवृत्ति है अथ उमका पुत्तिका मायन है। माग आत्माया सहज प्रवृत्ति है धम उमका पुत्तिका मायन है।

आध्यात्मिकता मात स्वतन्त्रता—य अभिन्न प्रथक है। सा स्वतन्त्रता पाहता है वह मा वि प्रति आम्बावान् नहीं है।

मनाविज्ञानक आचार्य डॉ० श्रीवदन कामका रम प्रवृत्तिपारा मूल माना है। साम्यवा क आचार्य काल मावत माग प्रवृत्तिपाका मूल अथ मानत है। उनक अभिमतमें अधपर हा मार विकाम आधारित है। अध्यात्मका भाषाम मारी प्रवृत्तिपारा मूल माना है। काम और लयका सिद्धांत लकाया है। पुण्यायवमुष्टकी कल्पना परिपुण है। माहकी तरफ निर्मातृ भी प्रवृत्तिका हनु है। मुख्ये लिए हर मनुष्य प्रवृत्ति करता है। भगवान् मनावीगन कया—धम थड़ात मुसक प्रति विरल हाता है। यदि मोक्ष ही प्रवृत्तिका हनु हाता ता सायु इतन कष्ट क्या ज्ञानते? मुख्य का प्रकारका है—मावाय और अनावाय। जिस मुसमें बाधा उपस्थित हो मक वह मावाय और जिसमें बाधा न डाली जा सके वह अनावाय है। दूसरा व्यक्ति उममें धूलि डालता है मुसम बाधा आ जाता है। धमिक मुस अवश्य है पर निर्बाध नहीं। प्रमास मुसी घाने बालक मुसम नि नि बाधा पहुँचायी जा सकता है। निदा और प्रमास की भूमित जा ऊपर उठा हुआ है उसक मुसमें बाधा नहीं डाली जा

मन्त्राः त्रिपदा भं गौरुप लव मुस है वर मर अनदापिक है । एव
 व्यास गौतमे अ नर ज्ञा है । १० विद्या उद्यम वां गौतम मुनाय
 वा उन व, अद्यता नरी ज्ञाता । गणन अद्रिय ज्ञाता है । त्रिम गौतम
 भावना भाता था वी उरुह विन उद्यम दुसका ज्ञु वर गण ।
 म्निर् वचिहर लगना वर अरुदित प्रकाशम नरी भाता । एर वग्मुम
 एनर वाव ज्ञािनी अरुताम म ज्ञा जाता है । धामिन मुस भाता
 विरु भार एवाभित्त हाता है इगलिन वर अनावाप है ।



सहिष्णुता

सहिष्णुता अच्छी है यह सब स्वाकार करते हैं। पर समयपर उस पकड़े रहना कठिन है यह भी अनुभव करते हैं। फलित यह हुआ कि सहिष्णुताका साधना जीवनमें आवश्यक है किंतु कठिन भी है। पहल उस ध्येय मानकर चरणसं वृत्तियाम अवश्य अंतर आता है। हम साधु हैं हमारा एक निश्चित लक्ष्य है। उसकी निश्चितिक लिए सहिष्णुताका विश्वास करना आवश्यक है। सहन गृहस्थको भा करना पड़ता है क्योंकि उसका बिना कोई गति नहीं। गणसे सहिष्णु एक साधु मर पास आया। वह साधु अवस्थाम आचार्यक कथनको भा सहन करनमें लक्ष्य था। अब वह किमोक्ष नहीं नोकरा करता है और मालिकक उपालम्भका भी सहता है। मन पूछा—क्या तुम सन्त हो ?

वह बाल न सका। नोकराम अनक विवशताआका सहना पड़ता है क्योंकि दूसरी ओर राटाकी समस्या है। साधुआक सामन रोटीकी समस्या नहीं है। इसलिए वे कभी कभी वास्तविकतासे दूर चले जाते हैं। रोटीका प्रश्न लेकर चलनेवाला घरतापर चलता है पर जिसके सामन राटाकी समस्या नहीं है वह कभी कभी कल्पनालोचन भी चलन लग जाता है। इसलिए सम्भव है कि इस अर्थमें गृहस्थक चिन्तनमें यथायता रहती है। चिन्तनकी अपरिपक्वतामें क्षुद्र ब्यक्तियाका सहाय अन्तिकर होता है। इतीलिए भगवान् महावीरन कहा—क्षुद्र ब्यक्तियाका सहाय मत करो। वे साधुआका अवन प्रलाभनमें फसाकर पत-अव्युत्तर कर देते हैं। उनको लगता है कि ससार सुखका समुद्र है। यही साधुवनमें कुछ नहीं। दूसरे सब अच्छा लगता है। बहुकाममें आनेवालाकी स्थिति दयनीय हो जाती है।

कोई-कोई व्यक्ति थोड़ा-सी कठिनाई में पड़ना जाने है। दोस्तों-भी सहिष्णुता
 न होनेसे ही ऐसा होता है। जरा साधें—कठिनाई कहीं नहीं है? क्या
 गुरुत्व भावनामें कठिनाईयाँ नहीं हैं? साधु भोगोंमें नहीं गरमों भूख
 प्यासकी कठिनाईयाँ समय-समयपर आती हैं थीर मान अवमान निम्न
 आर्थिकी स्थितियाँ भी आती हैं। क्या इनमें घबराकर पीछे हट जाना
 बुद्धिमानी है? यह मान हममें जान-बूझकर स्वीकार किया है फिर घब
 रानकी क्या बात है? कठिनाईयोंमें घबराना रोपका ही लक्षण नहीं है।
 उनका सही इलाज यह है कि कठिनाईयाँकी अनभवाी साधकोंमें सामन
 रहें और उनसे सावधान रहें। इससे मनका बाध हलका हो जाता है।
 रोग आती अपनी नाहोभी बहुत साधकों में दे देना है वस ही मनकी
 विकल्पान लिए अच्छे बंध (गुरु आदि) का चयन चाहिए। घरोरकी
 कृपाकी तरह मानसिक कठिनाईकी कृपाका भा चिन्ता होना चाहिए।
 मानसिक विकल्पक चुनने का उचित मानन स्थिति स्पष्ट रखनी चाहिए
 और जाना चाहिए उसके सावधानीम समवण भाव। विकल्पक समय
 रापका उभाए आता है पर वह भीमाय बाहर नहीं जाता क्याकि चिकि
 त्सकका उमपर नियंत्रण रखा है। हमी प्रकार मानसिक रोग भी कभी
 कभी विकल्पका कालम उमर आता है पर कुशल विकल्पकभी देख रखमें
 वह सामान्य अतिक्रमण नहीं करता। इतीलिए मानसिक स्वस्थताके लिए
 कुशल विकल्पकका सावधानी लेना अत्यन्त आवश्यक है। उसका
 सहिष्णुताक विकल्पक बहुत बड़ा योग है सफलता है।

व्यक्ति अपनी गुरुत्व अथवा झूठ अभिप्रायसे स्थानसे हटा लिया
 जाता है। उस समय वह परिस्थितिमें बाध्य होकर यदि निष्क्रिय बनता
 है तो परिस्थितियाँ उमपर छा जाती हैं और उम उठनेका अवसर
 नहीं देती।

जो वनमानमें अवमानकी घूट पीकर भी अपनी कृतत्व गतिना

उपयोग करता है उसका समय भी साथ निभाता है । वह अरमानकी पाछ छाकर समाजमें सम्माननाम स्थान बना ला है । इसलिए हर परिस्थितिमें अपन शक्तिका प्रयोग करनेवाला कथा निराग नहीं हाता ।



समर्पण

समर्पण का प्रकारका हाता है—१. वधानिक २. आत्मगत ।

आचार्य सधक नायक न हमार नियामक नै । उनक जागानुमार नमारा मारा व्यवहार चलता ह । नम नष्टिम नका नमारा वधानिक समर्पण । व आज हमें नकार मालका याथाका आदग न ना हम उसका पालन करग । पर म आज नम विषयका स्पग करगा उसमें वधानिक समर्पणकी बात ना नागा । नकार मीन च न जाना एक बात ह और नकार माल च न जानम कृपायताका अनुभव करना हुमगा बात न । वृत्तायताका अनुभव आत्मगत समर्पणमें हा हा सकता न । नकी व्यक्तिका विधान हुआ ह व न समर्पणका भावना प्रधान री न । कृष्णम क्षत्रुनसे कहा— मामक नरण धन । व्यवहारम व न जटिल मालका ह और लगता है कि इनम अपना स्वभाव अस्तित्व नहीं रहता । वह दूसरमें विलीन हा जाता ह । यह भी कम जटिल नहीं ह कि जो समर्पित नहीं हुआ व न कुछ पा भी नहीं सका । क्या महावीर बुद्ध और भिगुन समर्पण नहीं किया ? किया है, उसक बिना उनकी साधना सिद्धि तक क्या पहुँच पाती ? बदन क्या—

इहासनं पुण्यतु म गरीरं स्वगस्थिमास्य प्रलयं च यातु ।

अप्राप्य बाधि बहुकल्पदुलभां नवासनात् कायमिदं चलिष्यति ।

तबतक बाधि प्राप्त नहीं पागी इस आसनस मरा गरीर नहीं पागा । क्या यह समर्पण नहीं ह ? क्या महावाग्ज समर्पण नहीं किया ?

मस जवतक वैदल्य प्राप्त नहीं हागा तबतक म सभा प्रकारक कष्टका स न कहदा ।' क्या यह समर्पण नहीं ह एमा समर्पण उन सब मना

पुरुषाने किया है जिनका महानताम जनताको माग गान मिला । अबतक मनुष्य अपना कृतिमाना भार खाना है तबतक वह भारी बना रहता है । समर्पणसे व्यक्ति हलका बना रहता है । लेनेवाला भले हा भारी बने । अर्थात् देतवालेकी अदेगा लेनेवालेका बड़बी घुट पीनी होनी है ।

व्यक्तिको सबसे पहले समर्पित अपन प्रति, अपने ल पक प्रति जाना चाहिए । उसमे आघातके प्रति वह सहज समर्पित हो जायेगा । लक्ष्यके प्रति समर्पित हुए बिना वह आघातके प्रति भा समर्पित नहीं हो पाता । आघातक साथ जो सम्बन्ध है वह लक्ष्यका एकताके आधारपर है । लक्ष्य अविचल रहता है तबतक समर्पणका अभाव अहित रहता है । जिसका लक्ष्य मरानु मरत्यकी प्राप्ति है वह उसक लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर देगा ।

लक्ष्यके साथ माग-गकक प्रति समर्पण जाना चाहिए । क्योंकि व लक्ष्यस भिन्न जान है । हमार माग-गक आघात है । उनके प्रति समर्पण दो दृष्टिकोसे जाता है—वैधानिक और आत्मिक । वैधानिक समर्पण बुद्धिका स्थापना करता है उसमे हृदय अभिभूत नग जाता । हमार लिए वैधानिक समर्पण बहुतमूल्यवान् नो होना चाहिए । विधानमात्र प्रेरक जाना है और मयागए मात्र सूचक जाना है । साधुमात्र रजाहरणका श्रावक लोग लायकर नहीं जात क्योंकि उसमें सूचक घनि है वह किमीका नो राकता फिर भी कोई उसे लायकर नो जाता । जिस वैधानिकताक पाछ आत्माधता नो होती वनो प्रामाणिकता गितावा मर होनी है । कोई दुमरा देखता है तब आघातके आदेगका पालन किया जाय और कोई नहीं देखता हो तब आघातक आदेगका अतिप्रमण करनमें कोई सकीच नो होता । इस स्थितिमें आत्माका उन्मय नहीं होता ।

जनी तद गिष्यका सम्बन्ध वैधानिक नो होता व ई आत्माका उन्मय होता है । जही वैधानिकता प्रबल हाती है व ई आत्मा दब जाती है । एक विचार आना है—कम दूसरेमें अपना अस्तित्व विलीन क्यों करें ?

मिलता है। उसी व्यक्ति अपना चिंतन माग-दर्शन अधिक मानने लग जाता है वही ऐसा समस्याएं सदा ही जाता है। माग-दर्शनके विस्तारपर आस्था रखनेवालेकी कोई कठिनाई नहीं होती। द्रोणाचार्य एकलव्यके अंगुष्ठा मांगा। उसने तबकाज काटकर दे दिया। वही विद्याकी कोई भाषा नहीं बाल्मीकी थी कि उसे देना ही पड़। उसने साधा कि शिशुके मन गुरु मान लिया उसके प्रति मेरा क्या कृतभ्य है।

उसने अपने कृतभ्यका पालन किया और अंगुष्ठा दे दिया। कभी कभी गुरु और आचार्य ना ना आते हैं। एक गुरु हाथ है पर आचार्य नहीं एक आचार्य हाथ है पर गुरु नहीं। गुरुक प्रति सहज सम्पन्न होता है। आचार्यक प्रति बहु महज रूपमें नहीं भी होता पर कृतभ्यक नाम ही आचार्यके प्रति सम्पन्न आवश्यक है। आचार्य भा हर साधुने इतना अपेक्षा ता रख सकते हैं कि कर्मठ कर्म कृतभ्यक नाम सम्पन्नमें कोई कठिनाई न आय। गुरुक नात ही और अच्छा। मरा अपना अनुभव है—

एक समय चिंतन बिसे कहा जाता है, मन ही जानता था। केवल गुरु-वचनक आधारपर काम चलता था। वन ही संस्कार पड़ गये। किसी सुवचनका यह अच्छा भी न लग पर ऐसा होता था। जब चिन्तन होना लगता तो देना अपने लिए चिंतन करनेसे मिरपर मार चड़ता है। क्या अच्छा ही उस भारका उठानक लिए दूसरोंका धुन लें और स्वयं हलने ही जायें। चिन्तनसे मुक्त रहना सुख स्थिति है पर कृत्रिम माह सताता है कि उसके हमारा स्वाभाव्य छिन जाता है। जब हम विहार करते हैं तब यकानक कारण क्या दूसरेको अपना बखन नहीं दन। अपना जीवन लम्बे है इसलिए अपना चिन्ता-आकी गटराके लिए दूसरोंकी सहयोगी बना सें जा हमारा भार दाय और हम सुखम सोयें। इसमें मरम जीवन बितानक अवसर मिलना है। निश्चितताका जीवन तभी मिलता है जब चिन्ताक भार कोई स्वयं न लीये। दूसराका भारवान् बनाना ही सम्पन्न है।



मिलता है तब भी उपवास किया जा सकता है और अपनी स्वतंत्र भावना से किया जा सकता है। अन्नकी कोई कमा नहीं है पर साधुका युद्ध आहार नहीं मिला या कम मिला उस समय उसका चिन्तन यह नहीं होता कि सब लोग खा रहे हैं मैं भूखा क्यों रहूँ ? किन्तु वह एक प्रकार सोचने कि आज सृज ही मेरे उपवास या ऊनाचरी हो गया। भगवानने कहा— तद्योति अह्नियासए —आहार न मिलने या कम मिलनेपर सहज तप हो रहा है यह सोचकर भूखपर विजय पा लनी चाहिए।

एक व्यक्ति गाली देता है सामान्य दुबलताके कारण दूसरा उसे पींच गाली देता है। यह व्यक्तिपर परिस्थितिकी विजय है। मुनिकी परिस्थितिस प्रभावित नहीं होना चाहिए। उस यम्मोति किञ्चा' सहन करना मेरा धर्म है ऐसा सोच शांत रहना चाहिए।

गठे गाठय समाचरत—यह मायता आजके समाजमें भी टूटती जा रही है। हम जीते हैं जन ग्रासनमें और मायता लेकर चलने हैं समाजकी और वह भी मध्यकालीन समाजकी। यह कस उचित हो सकता है ? हमारी मायताका आधार योतराग होना चाहिए।

अनुकरण बलि सक्रामक हाती है। उसमें मूलभूत मायता निस्तत्र बन जाती है। साधुत्व स्वीकारक समय कोई यह कल्पना नहीं करता कि अमुक अमुक ठार रहगा ता म भी ठोक रहैगा। व्यक्तिव पीछे बंध जानम सिद्धांतका साथ नहीं निभ पाता। सत्यनिष्ठ व्यक्तिस कोई चलती ही जायता उह दाम्य है पर परिस्थितिक महार हा वह दाम्य नहीं है। आध्यात्मिक व्यक्तिम सत्यनिष्ठके बिचार प्रगाढ हान चाहिए। भगवान् मगवारन कहा है— त्रिवा वा रात्रा वा एगमा वा परित्तागदो वा सुते वा जागरमाण वा। त्निम अथवा रात्रिमें सभास मा अकर्म, स्वप्नमें वा जागृत अवस्थामें आध्यात्मिक व्यक्ति कोई अनुचित काम नहीं करता। नातान अग्निकी घषकता हुई गतक तटपर गन हाकर कहा—

मनसि उचसि काय जागर स्वप्नमार्गे
 यदि मम पतिभावा राघवाद्दशपुमि ।
 तदिदं दद शरीर मामक पावकं
 विकृतसुकृतमात्रा धन साशा त्वमव ॥

नॉन्म जी मेरा मन विचलित हुआ हो ता तू मम का क...
 कठार बात कोई आध्यात्मिक पक्ति है वह मक्ता है
 कह सकता ।

साधु परिषद्में प्रामाणिकताका परथा करना का...
 कोई आध्यात्मिक है और प्रामाणिक नहीं है एसा कहा...
 या भा नहीं हो सकता कि वाइ प्रामाणिक ताई शक...
 है । साधु वे ही होत है जिनको अध्यात्मक प्रति...
 इसलिए साधु परिषद्में प्रामाणिकताकी परथा...
 गतता । हमारी प्रामाणिकताका माया सूत्र है...
 करा जो न किया वह मत करो ।

भगवान महाभारत प्रामाणिकताका बहुत बूझ...
 उन्होंने बताया—एक साधु गुरुस्थ घरम...
 सोडगा—यह कहकर सूई लाया ता वह उसम...
 ही सकता । नाखून काटूगा—यह कहा...
 रक्त नहीं काट सकता । आमार नाखून...
 दूष लाया ता उस कोई दूषरा साध नहीं...
 यह चित्तना गहरा निश्चयन है । इस व...
 आध्यात्मिक है ।

परिस्थितिवर विजय

कल में अपनी आत्माक स्वरम...
 आया है । परिस्थितिका कभी कारण...
 प्रामाणिकता

सम्भव है / यह प्रश्न ही सवाल है । म इसका उत्तर इस भाषामें होगा कि यह सम्भव नहीं है । मच तो यह है कि साधकको परिस्थितिक सामन घुटने नहीं टकन चाहिए । वह पतनका माम है । साधना करने वाला पण नहीं लेना पर जब वह परिस्थितिक आवरणमें अपना अपना को लीनम लग जाता है तब उसका साधना सुतरम पड़ जाता है । जो साधक जाता है वह परिस्थितिक साथ अपनी सुख-दुःखका भा रणनका प्रयत्न करता है । जो एसा करता है वह परिस्थितिक सामन घुटने नहीं टकना । कठिनाईयाँ हर यकितक सामन आती है और परिस्थितिकी पर व्यक्तिका उलझानी है पर उनस परास्त य हा हात है जिनके पाम साधनाका बल नहीं हाता । दूसरी बात — साधक सरक्षणस पूर्य नहीं जाता । उसका कत्तव्य है जो स्थिति आये उस सरक्षकक सामन रखे । अपन सिरपर उसका भार न दाय । आचार्य व अधिकार व्यक्तिसर अपन आप मार्गें । साधना हर यकितका काम नहीं है । प्रत्येक यकित परिस्थितिकी चित्तम रत रहे तो सामन गढ़वडा आप ।

हम परिस्थितिक घबराये नहीं । मरा पम है ऐसा मान काम करते रहें । जहाँ कठिनाई आय उस यथास्थान पहुँचा दें । उस उचित स्थानपर न पट्टेचालक कारण हा समाज व व्यक्तिके लिए अनिष्ट हाता है । परिस्थितियापर चित्तन करम व उस दूर करनेका यकित्व अधि कारियापर है । उनका यह प्रयाम रहे कि किशोका अस-तोपका अनुभव न हा । जो अमन्ताप हाता है वह अव्यवस्थासे हाता है । उस दूर करनी अचिहृत बगका काम है । हमारा काम है—परिस्थितिका ज्ञायल न जाना मणिष्णु बनकर उसका सामना करना और अपनी आस्थाको बनाय रक्षना । आलाचना जीवनका अस्त-व्यस्त बना देता है । परि स्थितिक परास्त होकर पाडा भा कठिनाईका न सहन करना क्या बुद्धिमत्ता है ? परिस्थितिकी आये, उनका उचित समाधान छाजें, पर उनस परास्त

वह है। भूत-स्वान्त का परिचयित मानने के लिये कि-या लक्षण उक्त
व्यक्तियोग या लक्षण है। वही है कि परिचित कि-या लक्षण उक्त व्यक्तियोग
मानना तभी उक्त लक्षण ही ही कि-या लक्षण मानकर मान्य
किया जायगा।



परस्परता

साधारण का रूप है—व्यक्तिगत और सामुदायिक। हमारा सम्बन्ध ही सम्बन्ध है, साथ बढ़ता है, परस्पर सम्योग है आत्मबन्धन है। जहाँ अनक व्यक्ति साथ रहता है वही कठिनाई भी नाती है। अपनी अपनी रुचि हाता है अपना अपना संस्कार। सब एक रुचिक नहीं पाते। चिंतन भी सबका एक नहीं होता। यह विविधता माय भी है। भगवान् महावीरने कहा—
पक्षेय सण्णा पक्षेय किं नू पत्तय वयणा।

यह व्यक्ति-स्वातंत्र्यका सम्मान है। हम परस्पर रुचि व संस्कारका सम्मान करके ही अच्छा जीवन बिता सकते हैं नहीं तो धमनस्य बढ़ जाता है। येन अगतम ही व्यक्ति स्वातंत्र्य हाता है। यदि हम यह अगतमें हाते तो सब एक रूपमें एक समान हात। मनुष्य चेतनावान् है। चेतनाका धर्म है—विभिन्नता—रुचि व संस्कारका विभिन्नता।

पारस्परिकताका पहला सूत्र है—महिष्णुता। सधका मर्यादिक अतिरिक्त रुचि भदका परस्पर सहन करना चाहिए। अग्रगण्यको अपन सहगामा और सहगामाको अपन अग्रगण्यका रुचिका सम्मान करना चाहिए। जहाँ दानोकी रुचि टकराय वहाँ दानाको ही थोड़ा थोड़ा रुधम कर लेना चाहिए।

जहाँ सहन करनेका शक्ति कम होता है वहाँ परस्पर कलह हाता है। साधुवाद ही ष्णुता अधिक जाना चाहिए। आखिर गृहस्थ भी ता सहन करते हैं। पुरानो कहानी है—चीनका बादशाह अपन मन्त्रीक घर गया। उसका परिवार बड़ा था। सब साथ रहते थे। बादशाहन जिज्ञासा की—तुमन सबको बेश निभाया? मन्त्रीन उत्तर दिया—मन सब कुछ सहा।

मधमे आवाय सर्वाधिकारमग्न होत है । व भी ममय-समयार बहुत-बुद्ध महत ह । मदन कर्ता ब्रह्मणका लगत ह । जो छाट ह उनको अपन अग्रगण्यका सहन करनका अधिक विज्ञान करना चाहिए एसा कर्क हा वै छाटाका सतिष्णुताका पाठ पना सरत है ।

कोई व्यक्ति स्थलना करता ह । दूसरा उस न शाय तो चलता आन बन्तो ह ओर सपका सपटन निदिल हाता ह । यदि ब्रह्मना जाय ता उस छाट-सा लगता ह । एकी स्थितिमें सीसरा माय बनाना चाहिए । चलताका प्रतिकार अब य ज्ञान चाहिए पर साधना गुद्धिके साथ । अधिकारका भाषाक स्थानपर मुक्तावका भाषा अधिक मुकूठ दना ह । जितना बहूना ह एता जाय करता ह । इसक स्थानपर—यदि मुम ऐसा नहीं करत ता अच्छा रता, या एसा करत तो फला रहता ।—य वाक्य एती ब्रह्मना हू भी उस उग्र मननका अवसर नहीं हत । मुक्तावको भाषामें कहनसे उस बुरा नटा लगता । यह अन्धकारम-बद्धति ह हूय परिवर्तनका माग ह । इन अनाकर हम उगे सावन-ममनका अवसर देते ह । हूय परिवर्तनक प्रयोग अनक सवाम निय जा रह है । कुछ जलोम भा उर्हे महत्त्व दिया जा रहा ह । आवाय भि तुन कहा ह—यम बल प्रयोगसे नहीं हाता वह हूय परिवर्तनसे हाता ह ।

छाटा शायु बह साधुका चलता देख ता उस नम्रतासे सूचिन करना चाहिए । भाषाका व्यवहार सम्पक ज्ञानसे साधनका पद्धति भी ठीक हा जाता ह । कट्टु भाषासे व्यवहार भी कट्टु बन जाता ह । बहूने-बहूनेम दिन रातका अन्तर हाता ह । शिष्ट गणनाम दिया गया उपालम्भ भी हूयम नहीं शुभता । इसलिए भगवान् महावीरन भाषाका विवर दिया । भाषाके विषयमें जितना भगवान् महावीरन कहा उतना शायद ही किमीन कहा हा ।

भाषाके व्यावहारिक पहलूपर भा ध्यान देना आवश्यक ह

१ जहाँ दुमरोसे सहयोग लेनकी अपे ता हो वहाँ कृपया गणका प्रयोग

कर्मा चाि ग । प्राचाि पद्धतिम इच्छाकारण' ग' प्रयागम आता
 या । आचाय भा विशय परिस्थितिम हा आदेगकी भाषाया प्रयाग
 करत थ । गामा पत इच्छाकारण ग' प्रयागमें आता या ।
 पाशचाय्य दशमं Please (कृपया) ग' नामा पत 'यवहृत हाता
 ह । २ वाय समाप्तिपर कृतनोस्मि राउदर द्वाग जाभार प्र'गन
 व' । ३ अविनय या आगतना हानपर ग' ह एसा हा यया'
 ग'का द्वारा खद प्रवट कर । ४ काई काय करतका व्ह उम गमय
 न कर गुरु ता व्ह—मुझ क्षमा कर अभा थ आपका काय कराम
 असमय हूँ । ५ स्वाट्टिम तहूत' ग'का प्रयाग ज्ञाना चाहिए ।
 ६ अनुभूतिकी भिखनाव कारण छोट छोट प्रसंग भा आप्रहका प' कर
 दन ह । आप्रका स्थितिम—म साचूगा मुझे एसा लगा, सम्भव ह
 आप क'त ह वसा नो आदि-आदि वाक्याक द्वारा उसका टाल दना
 चाहिए । आग्रह तत्काल न बनता ह समय बाद टल जाता ह ।
 ७ एक व्यक्ति दूसरक विषयम गिजायत करता ह । बात अयया
 निरलता ह । उस समय आरोप क्यो लगाया एउ भारी वाक्य न
 कहकर मझ आचय ह आपन एसा बात कहे वहा आदि वाक्योका
 प्रयोग 'यवहारम सरसता लाता ह । भाषा कट्टु हानउ यवगर टट
 जाता ह इसलिए मामुदायिक जावनम भाषाका नध्र प्रयाग आवश्यक
 हाता ह । ८ बात अपन-आपम बडा नो हाता । कुछ लाग छटा
 बातकी भा मटाभारत बना दत हूँ और आध्यात्मिक व्यक्ति घडी
 बातका भी नो मिनटम समाप्त कर दत ह ।

उत्तरना प' करतवाला बात सामन आय ता उस शान्तिम साधना
 चाहिए कुछ विचार कर फिर उत्तर देना चाहिए ।

शमार्थं सवशास्त्राणि विहितानि मनापिभि ।

स पय सवशास्त्रैः यस्य शांत सदा मन ॥

शास्त्राकी रचना शान्तिक हेतु हुई । जिनका मन शांत ह वह शास्त्र

वित्त है। पय-पयपर जा अशा त बन वर कम गाम्भज हा मक्ता है।

प-पति जय्य घम घम धास्य गुरुणाविचाइए मास

रागहापण वि अणुयण त भोयम ल गच्छ।

—योडा मा प्रतिकूल मुननपर राय-द्वेषों आ जान ह कहनवाग सोचना ह—मैन इम ककर भूल की एस अधीर साधभावा सध गच्छ ना गर्दा कलाता।

जती बट्ट मा प्रतिकूल स्मिर्तका शात मनसे सहा जाना ह तहा गण वस्तुन गण हाता ह। उमीम रोनशावा मामुगयिक जीवन सुखर, सरल और पारस्परिकताम पण हाता ह।



तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो

तुम बचन दहना नीहा और भी कुछ हा। देहसे आगे तुम्हारी इन्द्रियाँ ह। उनम आग मन ह। उसम आगे ह आत्मा। तुम आत्माको माना या मत माना यह तुम्हारा च्छा है। क्याकि यह अरूपी ह। तुम चल हा। तुम स्थिर बनकर क्या कि आत्मा नही ह तो शायद नये कह सकाग।

क्या तुम जानत हो—तुम्हारे अंतरमें कितना शक्ति ह? नहीं जानत। यदि जानत ता तुम नहीं कहत कि आत्मा नहीं ह। भले कहो आत्मा नही ह इसमें मूझ कोई आपत्ति नही। पर आत्मा नही ह, इसे मानकर तुमी जनत आनन्दम शक्ति रहते हा। प्रा० ल्यानिट वासिलियेव का कहना ह कि मस्तिष्क गोध मस्थान तथा दूसरे मस्थानामें किय गय परीक्षणों आधारपर मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि मानव मस्तिष्कम शक्तिका अत्रय और अनन्त स्रोत ह। यह कासा दूर बढकर दूसराको सम्मोहित कर सकता ह। मानव-मस्तिष्ककी यह शक्ति धुम्बकीय तरंगों नही ह। उनसे भिन्न ह। हमके बारम अभा कोई पता नहीं चल सका ह।

तुम चतन मनक चगुलम पैसे हुए हो। इसीलिए तुम अपनी असाम क्षमताआस अनजान हो। तुम अवचतन मनको अवसर दा फिर देखो कि तुम्हारी क्षमताए किस प्रकार प्रकट होता हैं और तुम कितन शक्तिशाली बनत हो। तुम एक मनोबज्ञानिकस पूछा—चतन मनकी अपेक्षा अवचतन मन कितना शक्तिशाली है? भारतीय धर्मविज्ञान ध्यानको सर्वोपरि क्या माना? इसीलिए कि चतन मनको एकाग्र किय बिना अवचेतन मन क्रिया

गोत्र नहीं बनता। उसके क्रियाशील धन बिना गतिमान प्रकृत नहीं होती।

तुम प्रवृत्तिकी रट लगाते-लगाते समयमें बहुत दूर आ बढे। प्रवृत्ति यानो खबलता। यह तुम्हारे जीवनका नियम हो सकती है पर सत्य तुम्हारे जीवनका नियम नहीं है। वह अस्तित्वका नियम है। उस मृत निवृत्ति द्वारा तो पा सकते हो। निवृत्ति यानी स्थिरता। तुम स्थिर बंधिमें हो अपना प्रतिबिम्ब देख सकते हो खबलमें नहीं। तुम मरणाधी शोध करना चाहते हो तो और कुछ मत करो। केवल ध्यान करो। जीवन मनकी एकाग्र करो। अबचेतन मनकी अपनी शक्ति प्रकृतका अवसर दो।

ध्यान करो—यह बहुत सरल बात है। इसे समझने में बड़ी कठिनाई नहीं। पर बहुत ही ऐसा होता है कि गहरी मरलनामें ही तुम अपने गहराईका भावना सरल नहीं होता। ध्यानक लिए या किसी एक ध्यानक लिए बहुत सपना पढ़ना है और इतना सपना पढ़ना है कि तुम अपने किमी कायक लिए पढ़ना नहीं सपना पढ़ता। बसकि तुम अपने प्रवृत्तिके धारारण है। हमारा शरीर खबल है। हमारे प्रवृत्तिके खबल है। हमारा मन खबल है। मूल लगती है, इतनी बड़ी है कि मन खबल हो जाता है, एक प्रकृति ही उठती है। प्रकृति प्रकृतकी जन्म देती है। मूल मिटानकी रोटी आवश्यक होता है। उसके लिए मूल आवश्यक होता है। उसक लिए व्यापार और व्यापारकी प्रकृति बहुत कुछ। एक प्रकार एक प्रवृत्तिके लिए हजार प्रवृत्तिके प्रकृति ही है एक प्रवृत्तिमें-हजार प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं।

क्रोध आता है। इन्द्रिय मन और इन्द्रिय प्रकृति ही। प्रकृति शक्तिके लिए तुम क्रोधक कारणका निवारण करना है। तुम प्रकृति भी तुम्हारी प्रवृत्तियोंकी बड़ी दूर नहीं पाव। प्रकृति ही प्रकृति ही प्रकृति प्रकृति प्रकृति परास्त हो और शक्तिके प्रकृति ही प्रकृति ही प्रकृति

तुम अतन्त्र शक्तिके श्रोत हो

है ? यदि शोकात्ता प्रसर युग हो गता अणु अस्वाका युग कैसे जाता ?

तुम मव मानो आज निवृत्तिका बहुत बडा आवश्यकता ह । इसे पलायनवाक रहसर उपेक्षित करते रहोगे ता एक दिन यह सवार मानसिक रोगियाका कारण बन जायगा ।

आजक यार्त्रिक युगम मानव मनपर जितना भाइनात्मक दबाव पड रहा है जितनी ववारिक क्रान्ति बढ रही है जितना नाड़ी सरधानका तनाव बन रहा ह उतना पहले नहीं था । अधिकाग रोगाका कारण यह तनाव बन रहा ह । क्या निधिलीकरणसे अधिक लाभप्रद हमकी और कोई चिकित्सा ह ? अनुभव कता ह नहीं ह । हठयोगमें जो उवा सा भगवान भगवारकी भाषामें जो कायाभग ह और भगवान् बुद्धकी भाषामें जो आनापानस्मृति ह वनी हमका मवरेष्ठ चिकित्सा ह । यह निधिलीकरण क्या ह ? निवृत्ति । गरीर चेष्टाका निवृत्ति भाषाणी निवृत्ति और मनकी निवृत्ति । जो मनको खाली करना नहीं जानता वह उस वर नी सकता । तुम्हारी प्रवृत्ति इसीलिए प्रबल नी बनती ह कि तुम निवृत्तिका मुलाकर प्रवृत्ति करत हो ।

कामन वाक आराम और आरामक बाद काम जा करता है वह उस व्यक्तिकी अपेता अधिक काम कर सकता ह जो निरंतर कामनी काम करता ह विधान नी करता । जागरणक बाद नीक और नीके वाक जागरण—यक क्या ह ? प्रवृत्ति और निवृत्तिका सन्तुलन । निवृत्तिकी भरी परिभाषा ह सबसे बडी प्रवृत्ति । निवृत्तिका अर्थ ह हमरका प्रवृत्ति में प लकी निवृत्ति । प्रवृत्ति सत्का लक्षण ह । जिसका अस्तित्व ह उसम प्रवृत्ति ह सञ्चियता है । जिसमें प्रवृत्ति नहीं ह, वह अस्त है । तक गाम्भकी भाषाम कहा जाता है—जो अम क्रियाकारी ह वह सत् ह । पूण निवृत्ति कभी नहीं होता जिसाम भी नहीं होता । निवृत्तिका अण हा ह प्रवृत्तिका एकावर । एक वपानिक व्यापारसे निवृत्त होता है और बाध कायमें प्रवृत्त । एक किमान शाध-कायमें निवृत्त होना ह और कृपि काय

ज्ञेया, तुम ज त ज्ञा मग्न रोगे । तुम्हारा स्वायु संस्थान तुम्हें सुरक्षा
 रहगा और विचार का श्रु स्वतः छिन्न विच्छिन्न हा जायगा ।

यागाका नाम सुनकर चौको मत । म फिर कहता हूँ कि हर व्यक्ति
 को यागी बनना चाहिए । इच्छा और मनका इतना समाधान अवश्य देना
 चाहिए जितना मानविक सतुल्यके लिए आवश्यक हो ।

तुम्हारे आत्म तुम्हारे विचार और तुम्हारे सकार विचार तुम्हें
 पवित्रता किम हुए ह । तुम अपनी शक्तिके अग्रस्य स्रोतका प्रवाहित
 करना चाहते हो तो आवेधापर विचार प्राप्त करो । विशेषांशो मिटाओ,
 सकार विचारपर ध्यान करना । तुम योगी बनकर ही एमा कर सकोगे ।
 तुम निर भोगा बनकर सेवक हो रोगे स्वामी नही बनाने । सेवकको
 राटा मिल सकती ह पर गम धान नहीं मिलता । योगी वह हाता ह जिसके
 लिए समाधान पाना सौप नही रहता । समस्या तुम भा नहीं चाहते समा
 धान चाहते हो । तुम्हारी दैनिक आवश्यकताआंका समाधान बाहर ह पर
 तुम्हारा आंतरिक समस्याआंका समाधान वहीं बाहर नही ह । वह तुम्हारे
 भीतर ही ह तुम्हारे मनमें ह तुम्हारी आत्मामें ह । माका जलावा,
 उमक आलाकम अपन आपका हूँ । तुम स्वयं दम पाओगे कि तुम
 अनन्त पवित्रके साथ हो ।



तुम्हारा भविष्य तुम्हारे हाथमें

मन बड़े सहज भावसे क्या किया कि मनका जल्पाशा पर उस जल्पा
 क्या इतना सरल है? जितना नाम दासना है? तुम जब जब हनु
 जलानना यत्न करोगे तब-तब इच्छिया। तूफान आयगा। तुम उससे नहीं
 निपट पाओगे। मनका किया बुझाका क्या रह जायगा।

मन बड़े सहज भावसे क्या किया कि मनका खाली कर दिया।
 पर उसे खाली करना क्या इतना सरल है जितना शरीर में दोस्त है?
 तुम जब-जब उस खाली करनेका यत्न करोगे तब तब विकल्पोंका कूटान
 आयगा। तुम उससे नहीं निपट पाओगे। मन मराना भरा रह जायगा।
 तुम मानते हो कि स्मृति मनुष्यके लिए बरदान है। मैं भी मानता हूँ कि
 वह बरदान है। पर तुम क्या नहीं मानते कि वह अभिजाप भा है।
 विस्मृतिका तुम अभिजाप मानते हो। मैं भी मानता हूँ कि वह बरदान
 है। पर तुम क्या नहीं मानते कि वह बरदान भी है। कारा एति को
 कारी विस्मृति दाना अभिजाप है। कश्चिन् स्मृति और कश्चिन् विस्मृति
 दाना बरदान है।

कोई भा विचार मनमें उठता है वह अपना सस्वार छोड़कर है।
 विचार अच्छा भी होना है बुरा भी होता है। अच्छा सम्भार देकर
 उठता है तो बुरा सम्भार तुम्हें माथ ले जाता है। विस्मृतिका दान
 तुम्हारे हाथमें नहीं है तो तुम्हारा सुन्दर भविष्य तुम्हारे हाथमें नहीं है।
 तुम प्रयत्न करो कि कोई भी बुरा विचार तुम्हारे मनमें न
 यदि कोई घुम जाये तो विस्मृतिका सहारा लो। उधर इतना प्रयत्न
 जैसे वह तुम्हारे मस्तिष्कका स्पष्ट भी न कर पाया हो। विस्मृति प्रयत्न

तुम्हारा भविष्य तुम्हारे हाथमें

करोग तो उसका स्मृति प्रबल होकर उभर आयेगा । उसका उपाय यह है कि तुम अच्छे संस्कारका स्मृतिको दृढ़ता प्रबल करो कि बुराका विस्मृति अपने आप ही आय । प्रेम या उपनमको पुष्ट करो क्रोध नष्ट हो जायगा । मृदुताका पुष्ट करा अभिमान क्षीण हो जायगा । सृजुताका ध्यान करो कष्ट पराजित हो जायगा । सत्तापका धार धार विन्तन करा, लोभ विलीन हो जायगा । क्रोध अभिमान माया और लोभ—ये तुम्हारे भाग्य को क्षत विभत करनेवाले काष्ठान हैं । इनका प्रनिराध करके ही तुम अपने भाग्यको सृष्टि कर सकते हो । भाग्य और क्या है ? पवित्र विचाराको सृष्टि भाग्यका सृष्टि है और अपवित्र विचाराको सृष्टि ही दुर्भाग्यकी सृष्टि है । तुम स्वतंत्र सृष्टा हो अपने भाग्य और दुर्भाग्य । तुम चाँहा तो अपवित्र विचाराको विलीन कर पवित्र विचाराका सुजन कर सकते हो । आज तुम अपने मनपर अपने सूक्ष्म गरीरपर जो अंकित करते हो, वही कल तुम्हारा भाग्य बन जाता है । वर्तमानका प्रयत्न पुष्पाय महलाता है और अतातका प्रयत्न भाग्य । कृत कर्म या विचार अव्यक्त होता है तब वह संस्कार बनलाना है और वही जब व्यक्त होता है तब भाग्य कहलाना है ।

मैं नहीं जानता तुम आस्तिक हो या नास्तिक ? मैं नहीं जानता तुम भाग्यम वि वान करते हो या नहीं ? यह जानकर मैं क्या नया बात जान पाऊंगा ? मैं जानता हूँ कि क्रियाकी प्रतिक्रिया अवश्य होती है । इस शास्त्रत सत्यका तुम भा अस्वीकार क्या करोगे ? एक बार जो देखा है मुना है और अनुभव किया है वह स्मृति बनकर तुम्हारे सामने आता है—एक बार हा नहीं हजारा बार । वह तुम्हें प्रभावित करता है । उससे तुम कभी कुछ हान हो कभी सुख । कभी आनन्दकी सीटोपर चले जाते हो और कभी शाककी अतल महाराईमें डूब जाते हो । संस्कार उद्बुद्ध होता है स्मृति हो आती है वस ही कोई सूक्ष्म संस्कार उद्बुद्ध होता है तुम्हारी बुद्धि उचित चिन्ताम लग जाती है और कोई सूक्ष्म संस्कार जागृत होता है तुम्हारी बुद्धि अनुचित चिन्तामें लग जाती है ।

मन्त्रिक तुम्हारा स्थूल शरीरका एक भाग है। उसमें अक्षय्य प्रकोष्ठ है। प्रत्येक प्रकोष्ठमें अस्मत्त सस्वार भिन्न हूँ। उन्हें तुम चैत्रा सको तो तुम्हें एसे सकडा भू भाषाकी मृष्टि करनी पए। इम स्थूल शरीरका मूल कारण सूक्ष्म शरीर है। वृत्तकी प्रतिक्रियाका मूल हनु सूक्ष्म शरीर है और समीका स्थूल रूप है सूक्ष्म शरीर। तुम अक्षय्यको नया मानते इममें तुम्हारा क्या अपराध है? इन्द्रियाँ अक्षय्य आग नहीं जातीं। मन अक्षय्य तक पहुँचता है पर सत्कारके बिना नहीं। उस सहारा न देते हैं—इन्द्रियाँ और सत्कार। इन्द्रियाँ उस अक्षय्य तक नहीं जा सकतीं। क्योंकि अक्षय्य उनका विषय नहीं है। अक्षय्यमें तुम्हारा आस्था नहीं। तुम्हारे पास यह प्रमाण भी नहीं है कि जिसका यह सत्कार है वह अक्षय्य-दगी या। तुम किमोके शक्तकी प्रमाण नहीं मानते उसक लिए तुम्हारा भी तो तक है पर सत्कार की प्रतिवृत्त नहीं होता, उसक लिए तुम्हारे पास क्या तक है? अक्षय्य-दगी तुम मानो है। अनन्त अज्ञानमें जा हुआ है उसक लिए तुम कल्पना ही दे सकते है प्रमाण नहीं। प्रमाण तो तुम अक्षय्य-दगी होकर ही प्रस्तुत कर सकते है। दक्षय्य-दगी होकर तो तुम इनना ही कहनका अधिकार पा सकते हो कि मैं इसके आग नहीं दे पाता। इसका मैं सब विरोध करता हूँ। मैं दृष्टिको क्षमताका जानता हूँ और उनकी सीमास भलीभाँति परिचित हूँ इसलिए मैं तुम्हारी क्षमताको चुनीती नहा देता। पर तुम अपना सीमित दृष्टिको भुलाकर अनन्त सत्यका चुनीता देते हो इसे मैं तुम्हारा अनधिकार घटा मानता हूँ और मानता हूँ इस तुम्हारी प्रगतिमें बाधा। हमारा हर क्षण अपना अस्तित्व छोड़ जाता है। इस आकाश-मण्डलमें ऐस अनन्त अस्तित्व है। सूक्ष्मचक्षण यज्ञ नहीं ये सब अक्षय्य थे। आज उनसे मनुष्य परिचित हो गया है। हर पदार्थका प्रतिबिम्ब और हर ध्वनिको प्रतिध्वनि आकाशमें अक्षय्य होकर फिर व्यक्त हो जाती है—एककी अभिव्यक्तिका साधन टाँविअन है और दूसराका अभिव्यक्तिका रक्षिया। आज हम अक्षय्यस दृष्टकी आर भागे सटे हैं।

किमी युगमें जो आरम्भस्थ योगीक लिए दृश्य था, वह आज जन-साधारणन लिए दृश्य बन गया है। सत्यका रस्योदघाटन होता जा रहा है। यह अनन्त है इसलिए यह पूर्णतः अनावृत्त नहीं होता। फिर भी हम प्रयत्नवान् हा ता उतना सत्य अनावृत्त कर सकते हैं जितना हमारी गति और स्थिति को आलोकित कर सकें।

हम पुरुषार्थका गाथा गाते समय भाग्यका भूल जाते हैं। इसका अर्थ है कि हम सत्यस आँसू मिचोनी खेलना चाहते हैं। भाग्यम जा अविश्वास है वह पुरुषार्थको पठनातकी प्रक्रिया है। पुरुषार्थ कभी विफल नहीं होता—यह साश्वत सत्य है। भाग्य इसीकी एक व्याख्या है। पुरुषार्थ का जा दृश्य और तारकालिक परिणाम है वह तुम्हारी सफलता है। उसका जा अदृश्य और दूरगामी परिणाम है वही तुम्हारा भाग्य है। पुरुषार्थका तुम इसलिए महत्त्व देते हो कि उससे कृतमें परिवर्तन हा सकता है। अच्छा पुरुषार्थ प्रबल हो तो अशुभ कृतका दुग्ममें बदला जा सकता है और बुरा पुरुषार्थ प्रबल हो तो शुभ कृत अशुभम बदला जा सकता है। यह पुरुषार्थकी महिमा है पर भाग्य भी तो उसीकी अभिन्न शृंगला है। आजकी जागृत्ताका परिणाम आज भा अच्छा हो सकता है और बीस बष तक वह उसी रूपमें चल सकता है। आजक प्रमानका परिणाम आज भी भयकर हो सकता है और दस बष तक वह बसा फल दे सकता है। यह हमार जीवनकी सहज किन्तु बहुत जटिल प्रक्रिया है। हमारा हर पुरुषार्थ अणुभाका एक बग हमार साथ जोड़ जाता है। वे ही अणु अपनी स्थितिक क्रममें हम प्रभावित करते रहते हैं। हम उनको अटूट कडीकी छोडना नहीं जानते।

हर आत्मी विष और अमृत सानम जितना स्वतन्त्र है उतना उसका परिणाम भुगतनमें स्वतन्त्र नहीं है। पदपर चढ़नम हर आत्मी स्वतन्त्र है पर उतरनमें परतन्त्र। सानमें हर आत्मी स्वतन्त्र है पर पचानेमें परतन्त्र। इन नियमोंके आलोकमें तुम उस नियमको पढ़ो कि हर आदमी पुरुषार्थ

करनेमें स्वतंत्र है पर उसका वृत्त दायरे बाहर है। वह वृत्त बाहर में
 कि तुम इस भाव्य तुम्हारा वृत्त में बाहर है। जो वृत्त बाहर में है
 तुम्हारा भाव्य तुम्हारे ही वृत्त में है। जो वृत्त बाहर में है
 हा पर वनमानका पक्षिपार्थ वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 अधिकार नहीं है। तुम्हारे वृत्त बाहर में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 तुम्हें अधिकारमें नहीं है वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 भटकायना ? तुम भाव्यका वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 आर जा तुम्हारे भाव्यका वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 तुम भव गाआ उस वृत्त वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 तुम सुन्दर सुन्दर और वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 विचारोपर अधिकार पाना है। जो वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 अधिकार पानका विचार पाना वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 तुम्हारे भविष्यका निर्माण-साधक है वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में

जो विचार एक बार प्रकृतिक वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 छोट जाता है। इस जानकर तुम वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 आय। काह भी आत्मा अपने वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 सत्य है। मूत्र सत्य है कि जान वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 दूसरे वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 करनेवाला पहले अपनी आत्माका वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 वाला अपना अहित साचना है—वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 कि मनमें वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 दूसरेका अहित तो उससे हा भा वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में

हम असाम आकाशमें प्रसन्न वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 भी है और कनीशता भी है वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 कुछ है जो तुम चाहत हा और वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 जो चाहत उस तबतक नहीं पा वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में वृत्त में
 तुम्हारा भविष्य तुम्हारे हाथमें

तुम्हें अपने और दूसरोंके लिए बड़ा विचार मनमें लाना चाहिए ।
 पाना चाहते हो । तुम विक्रम चाहते हो तो निश्चित मानो कि
 विनाशका विचार मनमें भरकर तुम विक्रम नहीं कर सकते । विनाश
 विक्रमका विचार मनमें भरो वह स्वयं तुम्हारी ओर विक्रम
 आयेगा । तुम शान्ति चाहते हो तो निश्चित मानो कि जल्दका
 मनम प्रखलित कर तुम शान्ति नहीं पा सकते । शान्ति ही
 विचारसे मनको अभिप्रेरित करो वह स्वयं तुम्हारा धरण करेगा ।

मनका जवाना और पालो करना मायाके लिए सरल है पर
 त्रिं नहीं । किंतु इतना साधना तो सबको जानो चाहिए कि
 अध्यायीय भी पथ मिल जाये और इष्ट अनिष्टक ऊपर आ जाय ।



तुम्हें अपने और दूसराने लिए वही विचार मनमें लाना चाहिए जो तुम पाना चाहते हो। तुम विकास चाहते हो तो निश्चित मानो कि दूसरोंके बिना-पका विचार मनमें भरकर तुम विकास नहीं कर सकते। विकास ही विना-पका विचार मनमें भरा घड़ स्वयं तुम्हारी जार बिचा बिचा आयेगा। तुम शान्ति चाहते हो तो निश्चित मानो कि जलनका विचार मनमें प्रवर्धित कर तुम शान्ति नहीं पा सकते। शान्ति ही शान्तिके विचारसे मनको अभिपिक्त करो घड़ स्वयं तुम्हारा धरण करेगा।

मनका जलाना और शान्ति करना योगाके लिए सरल है पर सबके लिए नहीं। किन्तु अपनी साधना तो सबको हीनी चाहिए कि समाजकी अधिपतारीय भी पथ मिल जाय और इष्ट अनिष्टक ऊपर आ जाय।





